बुंदेलखण्ड की विलुप्त चित्रकला

Field:

Folk/Traditional and Indigenous Art

Sub Field: Others

Period of the Report:

Final Report –31st December 2016

Submitted by:

File No: CCRT/JF-3/22/2015
Veerendra Vishwakarma
Near Shri Siddha Durga Dham mandir,
Chandrashekhar Ward, Sagar (M.P.)
Pin No: 470002
Mobile No: 9098539162
E-mail ID: mr.viru33@gmail.com

vuØe

- चौक
- सुराँती
- स्वस्तिक (सांतिया)
- नाग
- ओम्
- उरैन
- चतेउर
- हांथे
- मौरता व विजनी
- चक्र
- वैमाता
- हरदौल चबूतरा
- दिवारी का थापा

Ykkd&fp=dyk dk ifjp;

लोककला, चाहे वह लोकगीत या लोकनाटक हो अथवा लोक चित्र या लोक मूर्ति, व्यक्ति की रचना होती हैं। भले ही व्यक्ति का नाम उससे न जुड़ा हो । उसे लोक रचित अथवा समूह द्वारा रची मानना उचित नही हैं। एक लोक चित्रकार जब लोकचित्र लिखता हैं। तब उसे पूरा करने के बाद ही छोड़ता हैं। यह संभव हैं कि लोकग्रहित होने पर लोकचित्र में दूसरा लोककलाकार कुछ परिवर्तन कर दे। परम्परागत सूर्य, चंद्र, श्रवण कुमार आदि के लोकचित्र कुछ परिवर्तन के बाद भी वैसे के वैसे ही है।

लेकिन संपूर्ण भारत वर्ष में अनेकों क्षेत्रों में कई लोकचित्र कलाएं हैं जिनमें एक ही कला को अलग-अलग क्षेत्रों में प्रयोग करते हैं, परन्तु इन कलाओं में समय के अनुसार व्यक्तियों के ज्ञान या अज्ञान के आधार पर अंशतः बदलाव आ जाते हैं। परंतु अभी यहा एक क्षेत्रीय चित्रकला को लिया जा रहा है। जिसमें बुंदेलखण्ड की लोकचित्रों में कई तो विलुप्त हो चुके हैं और कई विलुप्ति की कगार पर हैं। इसलिए यहां कुछ लोक चित्रकलाओं को लिया जा रहा हैं। और ये चित्र कलायें आगे प्रदर्शित की जा रही हैं।

<u>चौक</u> – महिलाओं द्वारा विवाह मंडप या पूजा के स्थान पर कलश रखने के लिये एवं देवी देवताओं को आशन स्वरूप प्रदान करने के लिये बनाया जाता हैं। यह सागर मध्यप्रदेश के समीप ग्राम रजौआ की श्रीमति गीता देवी द्वारा बताया गया हैं कि ये किसी भी मांगलिक त्योहार या किसी भी जन्म, विवाह या त्यौहार पर बनाया जाता है, यह वहा बनाया जाता है जहॉ देवी–देवताओं एवं पितृों के आवाहन करने व उन्हें आसन प्रदान करने के लिये बनाया जाता हैं। यह आठ रेखाओं वाला अष्टदल वाला चौक होता है जिसे महिलायें बनाती हैं। इसे चौक पूरना भी कहते हैं। यह गेंहू के आटे से एक केंद्र विन्दु से एक आड़ी व खड़ी रेखा खीचते हैं। और अन्य दो रेखाओं को इन दो रेखाओं के मध्य भाग से बराबर बनाते हैं। और फिर इन रेखाओं के छोरो को थोड़ा सा आगे ले जाकर आपस में जोड़ देते हैं। इन जुड़े हुए बिन्दुओं से कुछ छोटी छोटी रेखाये बनाते हैं। इसके आठों छोर आठ दिशाओं को प्रदर्शित करते हैं। चौक के मध्य भाग में कलश रखा जाता हैं। और कलश पर दिया प्रज्वलित कर रखा जाता है।

पूजा होने के पश्चात स्त्रीयाँ इसे अपने आँचल (साड़ी का पल्लू) के छोर से इक्ट्ठा कर लेती हैं। जिसे चौक लौटना कहते हैं और इसे हाथों से समेटकर पेड़–पौधे वाले स्थान पर विसर्जित कर दिया जाता हैं। चौक के बिना कोई भी पूजा–पाठ या मांगलिक कार्य संपन्न नही होता।

चौक

<u>सुराँती</u> – यह दीवाली की पूजा पर बनाया जाने वाला प्रतीक चिन्ह हैं जो कि यह सागर के समीप ग्राम जेरा की निवासी श्रीमाति मालती तिवारी जी बताती हैं कि इस मांगलिक प्रतीक को दीवाली की पूजा पर पूजा घर की दीवार पर बनाया जाता हैं। यह लक्ष्मी माता की पूजा का प्रतीक चिन्ह हैं। सुराँती में सोलह खाने बनाये जाते हैं। जो कि एक दूसरे को आपस में काटते हुए चौकोर आकार में बनाये जाते है। जिसमें ऊपर की ओर लक्ष्मी जी की आकृति बनायी जाती हैं। और लक्ष्मी जी की दाँए और बाँये में शुभ–लाभ लिखा जाता हैं। और सांतिया का चिन्ह भी बनाये जाते है। इसकी पूजा सोलह दीपों से की जाती हैं यह पूजा के समय सिंदूर से बनायी जाती है। इसकी पूजा पर हल्दी, चांवल, चंदन और फूल आदि से इसकी पूजा की जाती है। यह स्वंय माता लक्ष्मी का स्वरूप मानी जाती हैं। इसलिये पूजा में वरदान स्वरूप सुख–समृद्धि, धन–धान्य मांगा जाता हैं। बुंदेली बधुटियां मनोयोग से “सुराँती ” को बनाती हैं। एवं पूजा–पाठ संपंन्न होने के पश्चात वहां के दिये घर के द्वारों के दोनों ओर रखे जाते हैं। और अपने घर में धन रखने के स्थान पर रखे जाते हैं। ताकि माता लक्ष्मी वहां हमेशा निवास करें और घर को धन–धान्य से पूर्ण बनाये रखे।

सुराँती

<u>स्वस्तिक (सांतिया)</u> – भारतीय संस्कृति एवं पूजा-पाठ में स्वस्तिक को विशेष महत्व दिया गया हैं। स्वस्तिक एक आड़ी और एक खड़ी रेखा के मध्य भाग से काटने से बनता हैं। और इन रेखाओं के छोरों पर आड़ी रेखाऐं बनायी जाती हैं। इसमें चार खाने दिखाई देते हैं जो कि खाने के एक तरफ से खुले होते हैं। इन खानों के मध्य भाग में एक बिन्दु रखा जाता हैं। इसमें आड़ी व खड़ी रेखाओं के कटान बिन्दु को मुख्य केन्द्र बिन्दु कहा जाता हैं। यहॉ पर ये आड़ी और खड़ी रेखा स्त्री और पुरूष का प्रतीक माना जाता हैं। जिनके मिलने से सृष्टि का निर्माण होता हैं। इसमें चार रेखाऐं चारों दिशाओं के लोकपाल, अग्नि, इंद्र, वरूण और सोम के प्रतीक हैं। चार बिन्दुऐं चार वर्णो, धर्म, अर्थ, पृथ्वी,आकाश-पाताल और स्वर्ग लोक का भी प्रतीक हैं। स्वस्तिक गणपति जी का भी स्वरूप होता हैं। यह विवाह जैसे मांगलिक कार्यो में प्रयोग होता हैं। जहॉ स्वस्तिक बनाया जाता हैं। वहा भगवान गणपति जी की उपस्थिति मानी जाती है। अथर्ववेद में गणपति जी को सुर्य का प्रतीक भी माना गया हैं। इसलिये स्वस्तिक पूजा-पाठ के सभी मांगलिक कार्यो में प्रयुक्त होता हैं। और इस चिन्ह के बिना कोई भी पूजा संपन्न नही मानी जाती।

यह सुन्दर एवं सरल लोक चिन्ह हैं। इसे कुमकुम, हल्दी गेंहू का आटा, चावल का आटा, चंदन आदि से बनाया जाता हैं। इसे मंदिर और भवन के प्रवेश द्वार पर भी बनाते हैं। स्वस्तिक के आगे की दो रेखायें रिद्धि और सिद्धि का प्रतीक होती हैं। इसमें ऊॅपर और नीचे की रेखाओं को शुभ-लाभ का प्रतीक मानते हैं। इसमें सीधी भुजा का स्वस्तिक चिन्ह शुभ माना जाता हैं। और उल्टा स्वस्तिक मान, मनौती व अशुभ टालने के लिये बनाया जाता हैं। और मान, मनौती पूर्ण होने पर उस स्थान को गाय के गोबर से लीप कर उस पर पुनः सीधी भुजा का स्वस्तिक बनाते हैं। और भोग स्वरूप नारियल फोड़कर पूजा करते हैं।

स्वस्तिक (सांतिया)

नाग – नागों का रेखांकन नाग पंचमी पर किया जाता हैं। यह त्यौहार सावन माह की अमावस्या के बाद प्रथम पंचमी पर मनाया जाता हैं। इसमें नागों की पूजा होने के कारण इसे नागपंचमी कहते हैं। और इस दिन सुबह से दीवारों पर एवं द्वारों के बाजू से नाग देवता का चित्र अंकित किया जा हैं। इसमें द्वार के एक तरफ नाग एवं एक तरफ नागिन बनाये जाते हैं, यह चित्रांकन अलग-अलग समाज में अलग अलग तरह से बनाये जाते हैं। नाग पंचमी के दिन घर की बहू-बेटियाँ सुबह जल्दी उठकर स्नान करने के बाद कोयला को घिसकर उसमें गोंद मिलाकर रंग तैयार करते हैं। उसी काले रंग से तूलीकाओं से नाग का चित्र अंकित करते हैं। इनका चित्रांकन केवल पुरूषों द्वारा किया जाता हैं। लेकिन इनकी पूजा सभी लोग करते हैं। इनके चित्रों में एक विशेषता होती है कि यह बिना तूलीका उठायें कई कुंडली के नाग बनाये जाते हैं। इन चित्रों में नाग मध्य भाग में और आस-पास चाँद -सूरज नीचे के भाग में बिच्छू इत्यादि भी चित्रित किये जाते हैं। लेकिन ये प्रतीकात्मक ही होते हैं। नाग का पूरा चित्र बन जाने पर नाग की आँखें खोलने का प्रावधान है। उसे प्राण प्रतिष्ठा की संज्ञा दी गई हैं। इसकी प्राण प्रतिष्ठा के बाद दूध-दही का भोग लगाया जाता हैं। कपास की पोनी के द्वारा कुमकुम अक्षत से पूजा की जाती हैं । अनेक गांवों में तो नाग मंदिर भी होते हैं। लोग इन मंदिरों में जाकर नारियल चढ़ाकर पूजा करते हैं और कही कही तो नागों का चित्रांकन सिर्फ गाय के गोबर से किया जाता है। इनकी पूजा में घरों में प्रसाद स्वरूप गेंहू के आटे के फरा बनाये जाते हैं। ये तीन से चार इंच लंबे दोनो तरफ नोंकदार होतें हैं और इन्हें गर्म पानी में उबालकर फरा बनाये जाते हैं।

इसमें घी-शक्कर मिलाकर भगवान शंकर एवं नाग देवता को चढ़ाकर पूजा की जाती है। और इस दिन घरों में चावल नही बनाये जाते हैं क्योंकि इन्हें नाग देवता के समान माना जाता हैं। इस दिन कई सपेरें घर घर जाते हैं, और घरों में लोग इन नागों की दूध पिलाकर पूजा करते हैं। और बच्चों के उज्जवल भविष्य की कामना स्वरूप नाग को बच्चों के गले में डाला जाता हैं। इसके पश्चात सपेरों को कुछ दक्षिणा भी दी जाती हैं।

नाग पंचमी का त्यौहार संपूर्ण भारत वर्ष में मनाया जाता हैं। यहां नागों से संबंधित कुछ मान्यतायें निम्न हैं-

1. नागों को भगवान शिव का हार माना जाता हैं।
2. शेष नाग को भगवान विष्णु की सेज सैया माना गया हैं।
3. स्वप्न में यदी नाग दिखे तो धन लाभ एवं धान्य की कमी नही होती हैं।

नाग

<u>हरदौल चबूतरा</u> – बुंदेलखण्ड में हरदौल चबूतरा का अपना विशेष महत्व हैं। इस क्षेत्र में विवाहिक कार्यक्रमों का आरंभ लाला हरदौल की पूजा आराधना के बाद ही होता हैं। लाला हरदौल को यहॉ देवतुल्य स्थान प्राप्त है। इसके चलते बुंदेलखण्ड के लगभग प्रत्येक गांव में लाला हरदौल के चबूतरें बने हुए हैं।

शादी–विवाह के समय इन चबूतरों के पास पूजा दीवार पर गेरू से या चावल के आटे के घोल से आकृति बनाई जाती हैं। और यह आकृति में चौकोर होता हैं और चौकोरा में एक त्रिकोणीय आकृति बनाई जाती हैं और इस चौकोरा के चारों तरफ रेखाऐं बनाई जाती हैं इसके पश्चात घी के दीयें से पूजा कर हल्दी चावल चढ़ाये जाते हैं और नारियल व अठ्वांई का भोग लगाया जाता हैं।

ओरछा क्षेत्र के महाराजा के छोटे भाई लाला हरदौल ने अपनी भाभी के सम्मानार्थ जहर खाकर अपने प्राणों का त्याग कर दिया था। ऐसा माना जाता है कि मरने के बाद लाला हरदौल ने अपनी भांजी के विवाह में भात (चावल) पहुँचाकर और बाद में भनैंज दमाद की इच्छा स्वरूप उन्हें अपने दर्शन देकर अपने भाई होने का फर्ज को पूरा किया था इसी कारण से वैवाहिक कार्यक्रम में हरदौल चबूतरा के द्वारा लाला हरदौल को याद कर उनका सम्मान किया जाता हैं। इन मांगलिक प्रतीकों को सांकेतिक रूप में प्राप्त किया गया हैं। इन प्रतीकों का प्रयोग यहा तो किया ही जाता हैं परन्तु किसी विशेष आयोजन व त्यौहार आदि पर अंकित कर एवं भूमि–भित्ति अलंकरण में इन प्रतीको को प्राप्त किया गया हैं । बुंदेलखण्ड क्षेत्र में इस तरह के पर्व, त्यौहारों में गुरूपूर्णिमा, हरछठ पूजा, करवा चौथ पूजा, नाग पंचमी आदि में भित्ति चित्रण के द्वारा इन मांगलिक प्रतीक चिन्हों का चित्रण किया जाता हैं ।

इसमें नव विवाहित जोड़े को शादी के दूसरे दिन जब कन्या अपने पति के यहा आ जाती हैं तब दूल्हा व दुल्हन दोनों को हरदौल चबूतरें पर ले जाया जाता हैं। और वहां उनसे लाला हरदौल व प्रतीक चिन्ह की पूजा करायी जाती हैं और प्रतीक चिन्ह के पास दूल्हा और दुल्हन के सीधे हाथ से हल्दी का हाथा लगवाया जाता हैं।

हरदौल चबूतरा

<u>ओम</u> – बुंदेलखण्ड की लोक संस्कृति में ओम का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठान में किया जाता हैं। प्रत्येक आस्थावान व्यक्ति अपने भवन के मुख्य द्वार, पूजा घर एवं लेखन के प्रारंभ में ओम का अंकन करते हैं। इसके अंकन व उच्चारण से ब्रह्म से साक्षात्कार एवं उसके मायाभ्रम से मुक्ति तथा सत्य को समझने की शक्ति मिलती हैं तथा इसको किसी भी प्रकार की पूजा-पाठ एवं मंत्रों में प्रयोग किया जाता हैं और इसको मांगलिक अवसरों पर भी ओम को अंकित करने की परंपरा हैं। सामान्यतः उसे पूजा की जगह सर्वप्रथम द्वार के ऊपर अंकित किया जाता हैं। और यह किसी विशेष त्यौहार पर नही सभी त्यौहारों में इसका अंकन किया जाता हैं। यह सिंदूर से निर्मित किया जाता हैं। इसे द्वार के ऊपर अंकित करते हैं व द्वार के दोनों तरफ शुभ-लाभ लिखते हैं।

ओम

<u>उरैन</u> – बुंदेलखण्ड में शुभ अवसरों पर पूजा-पाठ व विशेषतौर से पितृ पक्ष में घर के मुख्य द्वार की भूमि या चौखट के पास में उरैन डालने की प्रथा हैं । इसमें चौखट (देरी) के पास की भूमि गाय के गोबर से लीपकर एवं चूने से चौखट (देरी) को पोतकर दरवाजे के दोनो ओर गेंहू के आटे से चौक बनाकर उसके मध्य बिन्दु पर एक दीपक जलाया जाता है। माना जाता हैं कि इससे माता लक्ष्मी का आगमन होता है। और घर धन-धान्य से भरा रहता हैं।

प्रकृति से प्रभावित होकर मानव ने दैवीय शक्तियों पर विश्वास कर लिया हैं। और इन्हें प्रतीक चिन्ह के रूप में चित्रित कर उनकी पूजा-पाठ करने लगे हैं। इस जीवनकाल में धर्म कर्म को प्रधानता देकर वेद मंत्रों, शास्त्रों, पुराणों आदि अनेक ग्रंथों से प्रतीकस्वरूप परमपिता परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग सुझाया गया। समाजिक धार्मिक पर्व त्यौहार और अनुष्ठानों के अवसर पर लोक चित्रकला के भिन्न-भिन्न प्रतीक चिन्ह चित्रित किये जाने की परंपरा हैं। और यह परंपरा आज भी कही कही प्रयोग की जाती हैं।

उरैन

<u>चतेउर</u> – यह विवाह के अवसर पर वर व कन्या पक्ष दोनों के यहाँ पर प्रवेश द्वार पर अंकित किये जाने वाले चित्र होते हैं। जो ये भित्ति चित्र होते है। उसे "चतेउर" कहते हैं। सामान्यतः तीज-त्यौहारों पर इन चित्रों को स्त्रियां ही अंकित करती हैं किन्तु विवाह के अवसर पर चतेउर बनाने के लिये एक चित्रकार आता हैं जिसे चतेवरी कहते है। चतेउर बनाने का काम कुम्हार जाति के लोग करते हैं। और यह उनका वंशानुगत पेशा होता हैं। चतेवरी कन्या व वर पक्ष के घर के द्वार पर सबसे पहले "श्री गणेशायः नमः" लिखकर चतेउर की शुरूवात करता हैं। और उनके "मूषक" को भी लिखता है। और फिर द्वार पर नीले,पीले,हरे,लाल रंगों से दीवार पर फूल, पत्तियों, वेल-वूटों को बनाता हैं। और दीवारों पर गमला और कलश पर आम के पत्तों के साथ नारियल रखा हुआ, हाथी, घोड़ा, तोता, मीन, मण्डप इत्यादि का चित्रांकन करता हैं। इसमें अंकित हाथी, शक्ति व ऐश्वर्य का प्रतीक हैं। घोड़ा गति व शक्ति का प्रतीक हैं। कलश जीवन की पूर्णता एवं तोता प्रेम और मीन संपन्नता का प्रतीक हैं। इसमें में कन्या पक्ष के चतेउर में वर पक्ष के चतेउर की अपेक्षा अधिक चित्रांकन किया जाता हैं।

सामान्यतः आजकल शादी-विवाह पर चतेउर में चतेवरी इन सभी प्रतीक चिन्हों के साथ में वर एवं वधु का नाम एवं विवाह की तारीख भी लिखता हैं। इसमें चतेवरी को कुछ पारिश्रमिक भी दिया जाता हैं। यह परंपरा आज भी कही कही देखने को मिल जाती हैं।

चतेउर

<u>दिवारी का थापा</u> – बुंदेलखण्ड में दीवाली को दिवारी कहा गया हैं और दिवारी पर हाथा का विशेष महत्व हैं। यह त्यौहार सुख और संमृद्धि का त्यौहार हैं। दिवारी पर सभी लोग घरों की साफ सफाई करते हैं और माता लक्ष्मी की पूजा करते हैं। ऐसे ही यादव जाति के लोग अपने पास में गायों को रखते है और उनके हित व सुख की कामना करते हैं। ये लोग दिवारी के समय तैयार होकर पगड़ी पहनकर व लट्ठ लेकर अपने इष्ट देव के समक्ष नृत्य करते हैं। और इस नृत्य को बरेदी नृत्य कहते है। और ये अपनी गायों को नेहलाकर व साफ करके उन्हें महावर हरे व लाल रंगों से दीयों को गायों पर चित्रित करते हैं और अपने हाथों के पंजो से भी चित्रित करते हैं। इन हाथों के चित्रों को ही हाथा कहते हैं। हाथा को घर के बाहर भी चित्रित करते हैं और घर के द्वार के पास में हल्दी के हाथा को भी लगाया जाता है। जिसे दिवारी का हाथा नाम दिया गया हैं। गायों को सजाने के पश्चात् गायों की पूजा करते है।

दिवारी का थापा

<u>हांथे</u> – बुंदेलखण्ड में विवाह के अवसर पर हल्दी के ही हांथे लगाये जाते हैं। हल्दी में ऐपन भी मिला लेते हैं विवाह के समय बुंदेलखण्ड में कन्या पक्ष वालों के यहां से लगुन में जो वस्त्र जाते हैं। उनमें एक चार मीटर का सफेद कपड़ा होता हैं, जिस पर कन्या के दांये हाथ का हांथा लगवाया जाता हैं। जो संभवता कन्या की पहचान करने का प्रतीक होता हैं। तेल की रस्म के दिन माय–मोरे के कोठे के अंदर दीवार पर घर की बुजुर्ग महिला हल्दी का थापा लगाती है। जो कुल देवता की स्थापना का प्रतीक हैं। और विवाह मण्डव के स्तंभ को फूफा अथवा मानदान पुरूष गाड़ते है। उस अवसर पर सर्वप्रथम मण्डव के स्तंभ पर हांथा लगाया जाता हैं। ननदोई – सलहजें एक दूसरे की पीठ पर थापे लगाती हैं। कन्या पक्ष में विदाई के पूर्व माय के कोठे में उसकी स्मृति के चिन्ह स्वरूप हाथें लगवाने की प्रथा हैं। इसी प्रकार जब वर, वधू के साथ अपने घर लौटता हैं तो वधु से सर्वप्रथम देवी के मंदिर पर पूर्व में बनाये गये, मौरते के ऊपर हांथे लगवायें जाते हैं, तत्पश्चात घर के प्रवेश द्वार पर बने मौरते के ऊपर एवं माय, वर पक्ष के स्थान पर हांथे लगवाये जाते हैं। जो वर का देवी स्वरूपा गृहलक्ष्मी के साथ आगमन एवं वधु का गृहस्थी में पदार्पण का प्रतीक तो है हीं, ये हांथे इस बात का प्रतीक भी हैं कि लक्ष्मी माता का हाथ उस परिवार पर बना रहें।

हांथे

<u>मौरता व विजनी</u>– बुंदेलखण्ड में पुत्र विवाह में मौरता व गहोई बनिया के यहां मौरता के साथ ही विजनी लिखने की परम्परां हैं। विजनी केवल घर के प्रवेश द्वार के यह पन्द्रह त्रिभुज और सात कमुरों की बनती हैं। जब बारत कन्या पक्ष के घर चली जाती है तो घर की महिलायें पूज्य कुल देवता के स्थान, देवी के मंदिर एवं घर को प्रवेश द्वार के दोनों तरफ दीवार पर ग्योरी (गेरू) के रंग का चौखटा बना कर उसके ऊपर त्रिभुज बनाकर मानवाकृति बनाती हैं। इसे मौरता लिखना कहते हैं। मौरता में तीन मौर धारण कर परिणय सूत्र बांधकर सृष्टि की संरचना करने वाले गृह रक्षक देवता स्वरूप वर एवं वधु के शुभ आगमन पर स्वागत का प्रतीक हैं।

मौरता व विजनी

<u>चक्र</u> – बुंदेलखण्ड की संस्कृति में चक्र को मांगलिक प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया हैं। धार्मिक कार्यों और मांगलिक अवसरों पर चक्र बनाना शुभ माना जाता हैं। यह विशेष तौर से बच्चों के जन्म के समय एवं विवाह के समय परिवार की ज्येष्ठ महिलाओं के द्वारा घर के मुख्य द्वार पर एवं पूजाघर में स्वस्तिक के साथ चक्र अंकित किया जाता हैं। इसके अंकन हेतु गेरू का प्रयोग किया जाता हैं। भारतीय धर्म एवं संस्कृति में चक्र संसार में समय का, सर्वव्यापकता का, प्रगति, सूर्य व धर्म का प्रतीक माना जाता हैं। इस चक्र में केन्द्र से बारह रेखायें बनाई जाती हैं जो बारह महिनों का प्रतीक माना जाता हैं।

चक्र

<u>वैमाता</u>– सही नाम “वयमाता” हैं। यह समयांतराल व शब्दों के उच्चारण के कारण नाम परिवर्तित हो गया हैं। ये माता आयु बढ़ाने का वरदान देती है। ऐसी मान्यता हैं कि इनकी कृपा से नवजात शिश ु की आयु वृद्धि होती हैं । मान्यता के अनुसार इस चित्र का अंकन गर्भवती स्त्री के शयनकक्ष की दीवार पर वैमाता की काल्पनिक आकृति का अंकन किया जाता हैं। विधिवत् पूजा–पाठ के पश्चात् नवजात शिशु की आयु वृद्धि की कामना की जाती हैं। पण्डित शालिगराम मिश्रा जी बताते हैं कि वैमाता की पुतरिया बनाते समय गुणा का चिन्ह बनाते हैं इसके ऊपर और नीचे की रेखाओं के दोनों सिरों को आड़ी रेखा खींचकर जोड़ते हैं। नीचे दो रेखाएं खींचकर पैरों का आकार देते हैं। ऊपरी रेखा के बीचों बीच तांश के पत्ते पर बनी ईंट का आकार बनाते हैं। जिसके अंदर आँखें, नाक, मुख व बिन्दी से सजाते हैं। इसका अंकन प्रसूति के छठवें दिन घर की सबसे वृद्ध महिला करती हैं। यह प्रथा बुंदेलखण्ड में अनेक वर्षों से प्रचलित हैं।

वैमाता

fHkfRr fp=

vuØe%&

- गणेश जी
- सुरांती
- स्वस्तिक (सांतिया)
- ओम्
- नाग
- चतेऊर
- मौरता व विजनी
- नौ टिपकी टीपना
- हरछ्ट
- चक्र
- वैमाता
- सवनाही
- हरियाली अमावस्या
- कमल

लोक चित्रकला

लोक में प्रचलित किसी भी तरह के संस्कार, धार्मिक अनुष्ठान, लोकपर्वो पर लोकचित्रों का अंकन अनिवार्य है। इस प्रकार के लोकचित्रों में एक आदर्श निहित होता हैं। ये मांगलिक प्रतीक भी कहे जाते है। लोकचित्र कला में हमें लोकमानस के मन, हृदय की संवेदनाओं, शिक्षण एवं पारिवारिक आस्थओं के विभिन्न पहलुओं के दर्शन होते है। चित्रकला को जब लोक जीवन द्वारा अंगीकार कर लिया गया, तब यह लोक भावनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर लोक चित्रकला में प्रतिष्ठित हुई।

मंगल सभी चाहते है। भूत, भविष्य और वर्तमान - सभी मंगलकारी हों यह भावना सदा और सर्वत्र रही हैं। देश और काल के अनुसार मंगल के प्रतीक चाहे बदलते जायें, परन्तु सबका लक्ष्य होता हैं। शुभ नये मंगल प्रतीकों की स्वीकृति और पुरातन की विस्मृति पर कुछ ऐसे प्रतीक होते है जो सदा सर्वत्र मान्य रहते है। जैसे सूर्य, चन्द्र, पंच महाभूत,(क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) की आराधना सभी करते हैं। वेंदों में भी इनकी शांति की कामना शांतिपाठ में पायी जाती हैं। क्योंकि इनमें से किसी का भी उग्र होना अनिष्ठकारी होता हैं, चाहे पिण्ड में चाहे ब्रह्माण्ड में।

मानव मात्र का प्रयास होता हैं कि उसे दुःख ना हो केवल सुख हो। दुःख तीन प्रकार के होते हैं - दैविक, दैहिक और भौतिक। पंच भूत की प्रतिकूलता से भौतिक रोग, अपघात आदि से दैहिक, चिंता या आकस्मिक व्यवधान से दैविक बाधाएँ जीवन में आती रहती हैं। इन दुःखों से मुक्ति के लिए ही भारतीय विभिन्न दर्शनों की प्रवृत्ति होती हैं- दुःखत्रयाभिघाताद्। भक्ति की तल्लीनता भी विभिन्न दुःखों को भुलाने के लिए होती हैं। मणोपरान्त के दुःखों से मुक्ति और मृतक के परिवार पर कृपा के लिए और्ध्वदैहिक क्रियाऐं की जाती हैं। जब मानव ग्रहवासी था, मानव तब भी वह मंगल के उपादान तैयार कर चुका था।

वैदिक प्रतीकों के उत्स उन आदिमानवों की आस्थाओं में भी खोजे जा सकते हैं।

यों तो मंगल एक ग्रह का नाम हैं परन्तु शुभ का वाचक भी हैं। वह भद्र, भला, शिव, शं, शुभ, कल्याण, स्वस्तिक आदि के साथ ओम् शब्द भी मंगल वाचक भी हैं। यों तो स्वस्तिक सितावर शाक का भी नाम हैं परन्तु प्रमुख रूप से क्षेत्र और पुन्य के लिए स्वस्तिक शब्द का उपयोग होता हैं। लेखन को स्वस्तिमुख भी कहते हैं, क्योकि परंपरानुसार लेखन का आरंभ स्वस्ति से होता हैं।

जीवन में जो भी अत्यंत उपयोगी और सुखदायक हैं। वे सब मंगल दायक हैं क्योंकि वे सुखद होते हैं। समय के साथ उपयोगिता और उपलब्धि न्यूनाधिक होती रहती हैं। तद्नानुसार उनमें कुछ अनुपयोगी हटते, घटते जाते हैं, तो नवीन जुड़ते भी जाते है।

यह मंगल या मांगलिकता जीवन के अनुभव के साथ जुड़ती गई हैं। जिससे किसी को या बहुधा को लाभ हुआ वह स्वीकृत हो गया उससे आस्था बनती हैं, श्रृद्धा बनती है। देव पूजा, देवाराधन, टोटका, तंत्र, यंत्र, तीर्थ यात्रा, तीर्थस्नान, दर्शन, पूजन, भेंट, दान, यज्ञ आदि अनेक रूपों में वह श्रृद्धा बनती जाती हैं। कुछ पूज्य प्रत्यक्ष होते हैं और कुछ परोक्ष। पंच महाभूत, सूर्य, चन्द्र आदि प्रत्यक्ष हैं, तो भूत, प्रेत, विभिन्न देवी-देवता आदि परोक्ष हैं। वनस्पति,नाग,मेघ आदि भी प्रत्यक्ष हैं। ग्राम देवता, वन देवता, क्षेत्र देवता आदि की प्रसन्नता भी मंगल दायक होती हैं। ये मंगल या मांगलिकता के अनुभव का परिणाम हैं जिससे लाभ हुआ वह मंगलदायी मान लिया गया और वही मांगलिकता का कारण मान लिया गया। एक, दो, दस, सौ का जिससे शुभ होता गया उसमें ही मांगलिकता मान ली गई और धीरे-धीरे उसका प्रचार हो गया।

कभी-कभी जो कष्टदायी होता हैं वह भी पूज्य हो जाता है। जो कष्ट देता है वह कष्ट हरण भी कर सकता है- जैसे विघ्नेश गणपति। गणपति, विघ्न विनायक के स्मरण के बिना गाव का कोई बच्चा भी काम आंरभ नही करता अतः प्रत्येक काम के आरंभ में गणपति को पूजा या स्मरण किया जाता हैं। ग्राम में आषाढ़ मास में फसल बोनी के बाद ग्राम देवता की सामूहिक पूजा कर रोगटा निकाला जाता है। यह सर्वमान्य हैं कि उससे गांव के पशुओं को रोग नही होता हैं। अशुभ का विनाश या अशुभ ना होना भी शुभ माना जाता हैं।

सभी प्राणी जीवन में सुख-सुविधा चाहते हैं, कष्ट कोई नही चाहता। कष्ट निवारण हो, सुख मिले और सुखमय जीवन का पथ प्रशस्त हो । इसके लिये समर्थ का सहारा लिया जाता हैं । जो काम को उससे भी सम्भव न हो सके , उसके लिये विभिन्न अदृश्य शक्तियों को प्रसन्न करने के विभिन्न उपाय किये जाते हैं इनमें चिन्हों का प्रयोग किया जाता हैं। तब यंत्र, मंत्र, तंत्र, टोटका जादू-टोना आदि की पद्धतियाँ बनती चली जाती हैं। ये सभी धर्मो में हैं। ये भावनाऐं सभी काल और सभी देशों में पहले भी थी और आज भी हैं। लोकानुरूप तथा लोकमान्य जो होता हैं, वह शास्त्र में समाहित हो जाता है।

मंगल में यथार्थ और आस्था का योग होता है। इसलिये प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय और समाज के अपने अपने मंगल प्रतीक होते है। अभिवादन में भी उन्ही शब्दों का उपयोग होता हैं, जिससे सामने वाला प्रसन्न हो। बहुधा मंगल वाचक शब्द होते है।

जो कल्याणकारी हो, महान हो शक्तिशाली हो, विशे"ा गुण वाला हो, समर्थ हो, उदार हो, प्रसन्न रहता हो- उसे भी मंगल माना जाता है। इसलिये देश कालानुसार उनमें भेद भी होता रहता हैं। हर क्षेत्र का जन मानस अपने क्षेत्र के त्राता को गौरव देते हैं। वे नाम अपनी अपनी भाषा में होने से भा"ाा भेद के कारण नाम भेद भी होते जाते हैं।

देवताओं में कुछ सर्वमान्य, कुछ स्थानीय, कुछ जातिगत, कुछ धर्मगत और कुछ देशगत होते है। इन देवी-देवताओं की पूजा-पाठ के लिए कुछ चित्रों का प्रयोग किया जाता है। इन चित्रों का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया हैं- भित्तिचित्र (दीवार पर), पटचित्र (जमीन पर) और कुछ चित्र कागज या वस्त्रों पर या किसी अन्य चीज पर बनाये जाते हैं। जो किसी भी जगह एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जा सकते हैं।

प्रथम सूचना (First Report) में इन सभी चित्रकलाओं में से कुछ चित्रों को संक्षिप्त में दर्शाया गया था। परन्तु द्वितीय सूचना (Second Report) में कुछ उन चित्रों में से और शोध किये गये भित्ति चित्रों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जा रहा हैं जो कि बुंदेलखण्ड में प्रयोग होने के साथ-साथ इन चित्रों का प्रयोग अन्य क्षेत्रों में भी किया जाता हैं। परन्तु इन चित्रों का आकार, चित्र व बनाने के माध्यम में कुछ अंतर होता है। इसके साथ ही इनको बनाने का विचार और उद्देश्य व विधि विधान में अंतर होता हैं। इसलिये सभी का विस्तार से वर्णन किया जा रहा हैं।

पटचित्र व कागज या वस्त्रों पर किये जाने वाले चित्रों का वर्णन तृतीय सूचना (Third Report) वर्णन किया जायेगा।

गणेश जी-

भगवान श्री गणेश मंगल मूर्ति हैं। जीवन के समस्त मांगलिक कार्यो में हम सर्व प्रथम श्री गणेश जी का ही स्मरण करते है। चाहे कोई पूजा या विधान हो, कोई कथा आदि का प्रसंग हो, घर में पढ़ने वाला कोई तीज-त्यौहार हो अथवा कोई मांगलिक प्रसंग हो, हमारी सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम श्री गणेश जी का ही पूजन- वंदन किया जाता हैं।

भारत में श्री गणेश को परब्रह्म ही माना गया है। हमारे यहाँ शिव, विष्णु, सूर्य, भक्ति तथा गणेश इन पाँचों देवों को परब्रह्म परमात्मा ने श्रृष्टि निमार्ण की इच्छा से सर्वप्रथम पंच भूतों - पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश की रचना की, फिर वह स्वंय इन पंच भूतों के अधिष्ठाता देवों के रूप में व्यक्त हुआ। पृथ्वी के अधिष्ठाता देव शंकर हुये, जल के गणेश, अग्नि की दुर्गा (शक्ति), वायु के सूर्य तथा आकाश के देवता विष्णु हुये। इसलिये इन पांचो देवों की उपासना को एक समान महत्व दिया गया हैं। इनमें से किसी एक को इष्टदेव मानकर उपासना करने पर साधक को निःश्रेयक की प्राप्ति हो सकती हैं। ये पांचों देव तत्व अभिन्न हैं। श्री गणेशपुराण मे कहा गया हैं-

अहमेव महाविष्णुरहमेव सदाशिवः।
अहमेव महाशक्तिरहमेवार्यमा प्रियः।।

अर्थात मैं ही महाविष्णु हूँ, मैं ही सदा शिव हूॅं। मैं ही महाशक्ति हूॅ, मैं ही सूर्य हूँ। पंच भूतों में व्यक्त परब्रह्म स्वरूप श्री गणेश मानव के पंच भौतिक देह में मूलाधार चक्र के देवता हैं। यही गणेश चक्र हैं। यही साढ़े तीन लपेटे मारकर कुण्डलिनी सुप्त अवस्था में स्थित है यही से सुशुम्ना नाड़ी प्रारंभ होकर ब्रह्मरंध्र तक गई है। व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के लिए सर्व प्रथम गणेश चक्र (मूलाधार चक्र) का भेदन अनिवार्य हैं, जिसके लिये श्री गणेश की कृपा

प्राप्त करना अनिवार्य हैं। फिर स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञाचक्र का भेदन कर साधक सहस्त्रारचक्र में प्रवेश करता है।

यह तो शास्त्र वर्णित हैं कि ये गणेश जी का रूप हैं, लेकिन जन मानस में गणेश जी शिव-पार्वती जी के पुत्र हैं। ये गजानन हैं, लम्बोदर हैं। तांबे के समान दमकती इनकी अंगकांति है। ये भक्तों के सभी विघ्न हर लेते हैं और अपने पिता आशुतोश भगवान शिव के औढरदानी हैं। भक्तिों की आराधना पर भीघ्र प्रसन्न होकर उनकी कामना पूर्ति करते हैं। ये विद्या-बुद्धि के दाता भी है, सभी का मंगल करने वाले है।

निश्चय ही हम भारतीय जीवन के हर महत्वपूर्ण तथा साधारण कार्यो में सबसे पहले किसी न किसी रूप में गणेश जी की ही पूजा करते है। चाहे किसी यज्ञ का अनष्ठान हो या किसी के मकान, दुकान या व्यवसाय आदि का उद्घाटन हो अथवा सत्यनारायण भगवान की कथा हो, सर्व प्रथम गणेश जी को ही प्रसन्न किया जाता है-

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरू में देव सर्वकार्येशु सर्वदा।।

अर्थात्- हे वक्रतुण्ड महाकाय गणपति, हे करोड़ो सूर्य के समान आभा वाले हे देव! आप कृपा कर मेरे सभी कार्य निर्विघ्नं पूर्ण करें।

हमारे लोक मानस में गणेश जी ऐसे बैठे हुऐ है कि हम उन्हें अत्यंत निकट का देवता मानते है। 'आओ गणेश जी महाराज, पधारो' इतना कहा और गणेण जी पधार गये। हमारे यहा विवाह के अवसर पर पंडित जी पाटे अथवा चौकी पर सुपारी रखकर गणेश जी की पूजा कर रहे हैं लेकिन घर की स्त्रियाँ नेगचार मे रीतिरिवाज अनुसार अपने ही घर के एक छोटे बालक को बिन्दायक (विनायक) मानकर टीका करके, उसकी पूजा कर लेती है, उसे लड्डू या बताशा खाने को देती हैं और समझती हैं कि गणेश जी प्रसन्न हो गये। इस प्रथा के पीछे यह भी

संकेत छुपा है कि छोटा बालक गणेश रूप है। ज्योतिष शास्त्र में भी गणेश जी को बालक रूप माना गया है। इस प्रकार इस रिवाज को सहज ही शास्त्रीय आधार भी मिल जाता है।

प्रत्येक धार्मिक आयोजन में प्रथम देवपुरूष के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है और इनकी सबसे पूजा किया जाता है। गणेश जी की मांगलिकता इतनी सहज रूप में स्वीकार है कि पूजा स्थलों, मंदिरों आदि में स्थापना के अतिरिक्त भी इन्हें घर के मुख्य द्वार के ऊँपर, दरवाजों के ऊपर, पठन-पाठन के स्थान पर, लाभकारी स्थान पर, अनिष्ट से बचने के लिये भी इनका अंकन किया जाता हैं अथवा इन्हें मूर्ति रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। गणेश जी का चित्रांकन शुभ और मंगलकारी माना जाता है इस कारण बहुत से व्यक्ति इन्हें माला, लॉकेट आदि के रूप में भी धारण करते हैं। गणेश जी का चित्रांकन स्थिति तथा स्थान के अनुसार किया जाता है। धार्मिक आयोजनों में इनके चित्रंण में हल्दी, चावल, सिंदूर, गेरू आदि का प्रयोग किया जाता हैं।

गणेश जी

सुरांती-

इस मांगलिक प्रतीक का अंकन दीपावली के अवसर पर पूजा घर की दीवार पर किया जाता हैं। यह लक्ष्मी माता की पूजा का प्रतीक हैं। सुरांती की साज-सज्जा सोलह दीपों से की जाती हैं इसी कारण से इस आकृति में सोलह खाने होते हैं। ऊपर की ओर लक्ष्मी जी की आकृति उकेरी जाती हैं। पूजा के अवसर पर हल्दी, चावल, चंदन और नैवेद्य से पूजन किया जाता हैं और उनसे सुख संमृद्धि का वरदान मांगा जाता हैं। बुंदेली वधुटियां मनोयोग से 'सुरांती' का अंकन करते हैं।

यह मांगलिक प्रतीक माता लक्ष्मी जी के पूजा का प्रतीक चिन्ह हैं। सुरांती में बनाये गये सोलह खाने एक दूसरे को आपस में काटते हुऐ चौकोर आर में बनाये जाते हैं। इसमें ऊपर माता लक्ष्मी बनाई जाती हैं। लक्ष्मी जी के दांयी ओर शुभ और बांयी ओर लाभ लिखा जाता हैं। और दोनो ओर स्वास्तिक का चिन्ह भी बनाया जाता है। इसकी पूजा सोलह दीपों से की जाती है। यह पूजा के समय सिंदूर से बनाकर हल्दी, चावल, चंदन और फूल आदि से इसकी पूजा की जाती है। यह स्वंय माता लक्ष्मी का स्वरूप माना जाता है। इसलिए पूजा में वरदान स्वरुप सुख-समृद्धि और धन-धान्य मांगा जाता हैं। पूजा-पाठ संपन्न होने के पश्चात् वहा के दिये घर के द्वारों के दोनों ओर लिखे जाते हैं और अपने घर में धन रखने के स्थान पर रखे जाते है। घर में बने सभी द्वारों पर दोनों ओर सिंदूर से शुभ-लाभ लिखा जाता है और प्रयोग की जाने वाली मशीनों एवं वाहनों पर स्वास्तिक का चिन्ह भी बनाया जाता है। ऐसी जगहों पर माता लक्ष्मी जी हमेशा निवास करती है और घर को समस्त विपत्तियों से दूर रखती हैं।अधिकांश घरों में गेरू द्वारा दीवार पर सुरांती बनाते हैं। और दीवाली का पूजन करते है। करवा चौथ के दिन भी दीवार पर चन्द्रमा का प्रतीक चिन्ह बनाने के पश्चात पूजन संपन्न होता हैं।

सुरांती

स्वस्तिक (सांतिया)-

स्वस्तिक भारतीय संस्कृति का प्रतीक चिन्ह हैं, जिसमें लोक मंगल की समस्त भावनाऐं समाहित हैं। संस्कृति का ऐसा सारगर्भित, संक्षिप्त, सरल, सुन्दर और आकर्षक प्रतीक चिन्ह विश्व में शायद ही कोई दूसरा हो।

स्वस्तिक एक आड़ी और एक खड़ी रेखा के काटने से बनता हैं। जिस जगह आड़ी रेखा, खड़ी रेखा को काटती हैं, वह मूल बिन्दु हैं। आड़ी-खड़ी रेखाऐं स्त्री और पुरूष का प्रतीक हैं। जिनके मिलने से सृष्टि का निर्माण होता हैं। चार रेखाऐं दिशाओं के लोकपाल-अग्नि, इंद्र, वरूण और सोम के प्रतीक हैं। चार रेखाऐं चार वर्णो, धर्म, अर्थ, पृथ्वी, आकाश, पाताल और स्वर्ग लोक का भी प्रतीक हैं। स्वस्तिक गणपति का प्रतीक हैं। विवाह आदि मांगलिक कार्यो में, जहाँ स्वस्तिक बनाया जाता हैं, वहां गणपति जी की उपस्थिति मानी जाती हैं। अथर्ववेद में गणपति को सूर्य का प्रतीक माना गया हैं। इस प्रकार स्वस्तिक सूर्य का प्रतीक हैं।

लोक का कोई छोटा सा अनुष्ठानिक कार्य बिना स्वस्तिक पूजा के प्रारंभ नही होती हैं। कलश की स्थापना स्वस्तिक पर होती है। स्वस्तिक को देखने भर से मन में प्रसन्नता का आभास होता हैं। इसे कुमकुम, हल्दी, आटे, चंदन आदि से बनाया जाता है। यह मंदिर और भवन स्थापत्य में प्रवेश द्वार पर उकेरे जाते हैं। विद्वानों का मत हैं कि घर के प्रवेश द्वार पर दरवाजे के दोनों पल्लों पर सिंदूर से स्वस्तिक बनाया जाये तो घर में श्रीवृद्धि होती हैं। स्वस्तिक के आगे की दो रेखाऐं रिद्धि-सिद्धि का प्रतीक हैं। स्वस्तिक के ऊपर-नीचे की दो रेखाऐं शुभ-लाभ का प्रतीक हैं। इससे घर में लक्ष्मी का वास होता है।

व्यंजनों में स्वस्तिक 'क' का प्रतीक है। 'क' का अर्थ सुख-शांति प्रचिलित हैं। 'क' का अर्थ ब्रह्मा भी है। 'क' की आकृति स्वस्तिक से मिलती से मिलती हैं। स्वस्तिक लोक मंगल का प्रतीक हैं। स्त्रियाँ हर व्रत-उपवास अनुष्ठान में

स्वस्तिक बनाना नही भूलती हैं। स्वस्तिक का लोक नाम हैं- चौक। इसी चौक का लोकगीतों में शुभकार्य में वर्णन मिलता हैं जो प्रसन्नता का प्रतीक हैं।

स्वस्तिक का शाब्दिक अर्थ है आशीष। इसकी चार भुजाऐं भगवान विष्णु की चार भुजाऐं भी मानी गई है। इसलिए भगवान विष्णु के आशीर्वाद के रूप में इसे बनाया जाता है। स्वस्तिक के मध्य में खड़ी व आड़ी रेखाऐं पुरूष, नारी और प्रकृति, जड़ और चेतन, ब्रह्म और माया, अमृत और मर्त्य, मूर्त और अमूर्त इत्यादि सनातन तत्वों की ओर संकेत करती हैं। इन रेखाओं के छोरों पर की चार रेखाऐं चार गतियाँ (दिशाऐं), चार पुरूषार्थ, चार वेद, वर्ण एवं आश्रम की प्रतीक हैं। समस्त भूमण्डल पर मानव समाज के कल्याण के प्रतीक स्वस्तिक को पूजा-पर्व के अवसर पर प्रारंभ में बनाया जाता है। सृष्टि के निर्माण में स्त्री-पुरूष रूपी दो शक्तियों के योग तथा चतुर्गति रूप में घूमते जीवन के महा सत्य का प्रतीक भी माना हैं। कल्याण कारी ओमकार एवं गणपति के बीजाक्षर इसकी उत्पत्ति का मूल हैं।

स्वस्तिक को मंगल प्रतीक चिन्ह के रूप में सर्वत्र बनाते हैं। प्रदेश में नये वर्तन का उपयोग आरती की थाली, दरवाजे के बीच में या पल्लों पर भी स्वस्तिक की रेखाकृति बनाते हैं। घर, दुकान, खाताबही, मंदिरों में स्वस्तिक बनाया जाता है। तुलसी चौरा व घर के प्रवेश द्वार पर बनाया जाता हैं। यह कल्याण की कामना से मंगल करने की भावना से बनाया जाता है। इसका विस्तार जितनी बड़ी जगह है, उतना बड़ा किया जाता हैं। यह चारों दिशाओं की ओर से शुभ संदेश, कल्याणकारी कार्य होने का प्रतीक हैं। चारों दिशाओं में इसके अनंत विस्तार होने की संभावना रहती हैं ग्रामीण क्षेत्रों, दीवारों, किवाड़ों, कमरों, पूजा के लिये रखी गई मूर्तियों, मंदिरों के शिखरों पर 'स्वस्तिक' जरूर बना होता हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के लोग भी शुभकामनाओं की दृश्टि से स्वस्तिक बड़ी पवित्र भावना से बनाते है। नये सामान, वर्तन या

धातु के वस्तुओं पर घी, चंदन, वंदन, गुलाल या चावल,आटे के घोल से स्वस्तिक चिन्ह बनाते हैं। लोक परम्परा में ऐसे शुभ प्रतीकों का सहज रूप में शामिल होना इसके मंगलकारिता, लोक कल्याण की जन भावना को व्यक्त करता हैं। यही कारण हैं कि परम्परा में कई पीढ़ियों से इस शुभ चिन्ह प्रतीक का सर्वत्र उपयोग किया जाता हैं। हर प्रकार के मंगलकारी सामग्रियों स्वस्तिक का शुभ प्रतीक बना होता हैं।

प्रदेश के शिल्पकार, बढ़ई, सुनार, मकान बनाने वाले मिस्त्री, राउताइन भी स्वस्तिक के प्रतीक हो मंगल कामना से अपने शिल्पों में उपयोग करते हैं जो इस बात को स्पष्ट करता है कि स्वस्तिक सर्वत्र मंगलकामनाओं का प्रतीक हैं।

स्वस्तिक को बुंदेलखण्ड में सांतिया या सतिया कहते हैं। विवाह के अवसर पर विवाह के प्रत्येक सामान डलिया-टिपारा, कलश, मड़वा आदि पर स्वस्तिक बनाते हैं। यह भारत का ही नही विश्व के प्रायः सभी देशों का मांगलिक प्रतीक हैं। हिन्दू अपने सभी धार्मिक अनुष्ठानों, व्रतों, संस्कारों और नयी वस्तुओं आदि में प्रचीन काल से ही इसका प्रयोग करते आ रहे हैं। स्वस्तिक पूजा का चलन हमें आदिम संस्कारों से लेकर भौल-चित्रों, सिंधु घाटी की सीलों, जैन-बौद्ध तथा हिन्दु धर्म प्रतीकों के रूप में मिलता हैं। भारतीय स्वस्तिक एक चर्तुभुज प्रतीक हैं। जो कल्याण और ऐश्वर्य तथा प्राचुर्य की अपनी संपूर्ण चेतना और शक्ति के साथ सूर्य देव के संपूर्ण चिन्ह का प्रतिनिधित्व करते हैं। पद्मपुराण के अनुसार चातुर्मास में जो स्त्रियाँ देवता की मूर्ति के सामने स्वस्तिक और अष्टदल कमल की अल्पना बनाती है या चौक पूरती हैं, उनका सुहाग अखण्ड रहता हैं। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार प्रातःकाल जिसके घर में स्त्रियाँ भूमि लीपकर उसमें स्वस्तिक नही बनाती थी, उन घरों से वित्त, यश और आयु के विनष्ट हो जाने का जनविश्वास प्रचिलित था।

सिद्धांतसार के अनुसार स्वस्तिक का मध्यबिंदु, विश्व का गर्भाशय हैं, इसी का नाम सत् हैं। यह बिन्दु जब रेखाओं में फैलता हैं और उसका जो व्यास बनता हैं वह लिंगरूप तत्व होता हैं यह महायोनी में क्षोभ पैदा करता हैं। जो उत्पत्ति के लिये प्रेरित करता है। उत्पत्ति के प्रेरक स्वस्तिक को दूल्हा-दुल्हन के सामने तथा पाटी पर अंकित किया जाता हैं। जन्मों-जन्मों तक उनका संबंध अविच्छिन्न रहें, उनका वंश आगे बड़ता रहें, इस भावना से अनुप्राणित होकर वर-वधु आमने सामने खड़े होकर इस प्रकार स्वस्तिक की विवाह के मांगलिक प्रतीकों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका हैं।

स्वस्तिक का प्रयोग बुंदेलखण्ड के अलावा समूचे भारत में अलग अलग स्थानों पर किया जाता हैं और कहीं-कहीं इसका प्रयोग भिन्न बताया गया हैं। जैसे मालवा में अलग प्रकार से उल्टा स्वस्तिक बनाया जाता हैं। यह विचित्र प्रकार का प्रतीक चिन्ह द्वार पर मांडा जाता है जो देखने में अमंगलदायी किन्तु वास्तव में मंगलदायी होता हैं वह हैं 'उल्टा सांतिया' द्वार के दोनों तरफ उल्टे चक्र में काले रंग से सांतिया मांडा जाता है। यह सिद्धी विनायक के प्रति भक्त का रूष्ट भाव प्रकट करने का प्रतीक है जिसकी संतान नही होती, वह द्वार पर उल्टा सातिया बनाते हैं। यह विशेश रूप से काले रंग से ही मांड़ा जाता हैं। संतान के होने पर गणपति जी की विशेश पूजा पर अंकन मिटाकर सीधा सातिया मांड़ा जाता है। चौपड़ सुखमय जीवन में मनोरंजन का प्रतीक हैं वही दही विलोनी (मथानी) घर में भरपूर दूध, दही होने की कामना का प्रतीक हैं।

जैन समाज का मांगलिक चिन्ह जिसे स्वस्तिक कहा जाता हैं। एक निर्धारित आकार में रेखांकित किया जात हैं। उस आकृति के भीतर अभय मुद्रा में हस्त तथा हस्त में चक्र का प्रतीक मांडा जाता हैं। हस्त आशीर्वाद के प्रतीक में धर्म चक्र के रूप में मांगलिक प्रतीक हैं।

स्वस्तिक (सांतिया)

ओम् –

ओम् के संयोग से विनिर्मित प्लुत स्वर हैं। सभी मन्त्रों में ओम् हैं। ओम्कार अनहद नाद हैं। अकार, उकार, मकार और धर्मतंत्रता युक्त ओम् एक ऐसा अद्भुत मंत्र हैं। जिसका उच्चारण प्रत्येक स्तुति, आरती एवं धार्मिक अनुष्ठान आदि में किया जाता हैं। ओम् को परब्रह्म का प्रतीक माना गया हैं। उपनिष्दों में ओम् सच्चिदानंद कहा गया है। 'अ' को सत्, 'उ' को चित् और 'म' को आनंद का वाचक माना गया हैं। ओम् तीन देवों का प्रतीक हैं। ये तीनों मात्राऐं मानवीय शक्ति का प्रतीक है। अंतिम आधी मात्रा पूर्व की तीनों मात्राओं के सहयोग की सूचक हैं। हमारी संस्कृति में ओम सनासतनीय प्रतीक हैं। सृष्टि का आदि और अंत ओम में समाहित हैं। ओम के बिना वेद मंत्र पंगू माने जाते हैं, यानि ओम मंत्रों का बीज मंत्र हैं, ओम् मंत्रों के आदि का प्रतीक हैं। "श्रीमद्भागवत् गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है –

"ओमित्येकाक्षर ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति व्यजनदेहं स याति परमां गतिम्।।"

अर्थात जो पुरूष 'ओम्' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिंतन करता हुआ शरीर का त्याग करता हैं, वह पुरूष परमगति को प्राप्त होता है।

परमेश्वर की तीन शक्तियां हैं– अनुंतर, इच्छा और उन्मेश। अनुतर का 'उ' इच्छा का 'इ' और उन्मेश का 'उ' मे तीन वर्ण ही ओम् हैं इस ओमकार मंत्र में 19 शक्तियां हैं–

(1) रक्षण शक्ति (2) गति शक्ति (3) कांति शक्ति (4) प्रीति शक्ति

(5) तृप्ति शक्ति (6) अवगम शक्ति (7) प्रवेश अवति शक्ति (8) श्रवण शक्ति (9)स्वाम्यर्थ शक्ति (10)याचन शक्ति (11)क्रिया शक्ति

(12)दीप्ति शक्ति

(13) इच्छित अवति शक्ति (14)वाप्ति शक्ति (15)आलिंगन शक्ति

(16) हिंसा शक्ति (17)दान शक्ति (18)भोग शक्ति (19)वृद्धि शक्ति

ओमकार के ही 'प्रणव' और 'उद्गीथ' दो अन्य नाम हैं। ये ओमकार के ही उपाधियों के ही प्रतीक हैं। ओम सर्व रसों में श्रेष्ठ रस हैं। महार्शि विनोबा के मत से 'रसशेखर' है। ओम की ध्वनि परब्रह्म की वाचक और स्तुति की प्रतीक हैं। ओम् आर्दिदेव महादेव शिव का प्रतीक हैं। ऋषियों ने ओम्कार को प्राण का प्रतीक माना हैं। प्राण ही प्रणव हैं। प्राण को अमृतत्व की प्राप्ति ओम से ही होती हैं। अतः ओम अमरता का प्रतीक हैं। महाकाल के साथ काल का भी प्रतीक हैं।

छान्दोग्य उपनिशद् में मूलभूत दाम्पत्य की कल्पना की गई है। दाम्पत्य यानी वाणी और प्राण। इन दोनों का संयोग ओमकार में हुआ हैं। इसका मतलब यह है कि वाणी और प्राण के विशिष्ट संयोग से ही ओम् का उच्चारण होता हैं।

पूरे भारत वर्ष में ओम् से ही सारे मंगल कार्य प्रारंभ किये जाते हैं अब तो वैज्ञानिकों ने भी ओम् की शक्ति को सिद्ध कर दिया और पूरे विश्व को ओम का महत्व बताया।

बुंदेलखण्ड की लोक संस्कृति में ओम् का प्रयोग प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में किया जाता हैं। प्रत्येक आस्थावान व्यक्ति अपने भवन के मुख्य द्वार, पूजा घर एवं लेखन के प्रारंभ में ओमकार का अंकन करते हैं। इसके अंकन व उच्चारण से ब्रह्म से साक्षात्कार एवं उसके माया भ्रम से मुक्ति तथा सत्य को समझने की शक्ति मिलती है मांगलिक अवसरों पर भी ओम् के अंकन की

परम्परा हैं। बुंदेलखण्ड में उपनयन संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले गीत में यज्ञोपवीत के तीन धागों की प्रतिकात्मकता का उल्लेख इन पंक्तियो में हुआ है। जिसमें यज्ञोपवीत के प्रथम धागे में ओम् का वास बताया गया हैं।

तीन तगा को डोरा रे दमरी को सूत ये भइया।
तीन तगा को डोरा रे कैसो मजबूत सुन भइया।।
पैले तगा में ओमकार है दूजे में अगन सबूत ये भइया।
तीजो तगा में नागवास है.....।

माना जाता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सदा ओम की ध्वनि निस्रत होती रहती हैं और आपके हर श्वास से ओम की ही ध्वनि निकलती हैं यही हमारे - आपके श्वास की गति को नियंत्रित करता हैं। माना गया हैं कि अत्यंत पवित्र और शक्तिशाली हैं। किसी भी मंत्र से पहले यदि ओम जोड़ दिया जाये तो वह पूर्णतया शुद्ध और शक्ति संपन्न हो जाता हैं। किसी देवी देवता, ग्रह या ईश्वर के मंत्रों के पहले ओम लगाना आवश्यक होता हैं। जैसे - श्रीराम का मंत्र- ओम् रामाय नमः, विष्णु का मंत्र- ओम् विष्णवे नमः, शिव का मंत्र- ओम् नमः शिवाय प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि ओम से रहित कोई मंत्र फलदायी नही होता चाहे उसका कितना भी जाप हो। मंत्र रूप में मात्र ओम् ही पर्याप्त हैं। माना जाता हैं कि एक बार ओम् का जाप, हजार बार किसी मंत्र के जाप से महत्वपूर्ण हैं। ओम् का दूसरा नाम प्रणव (परमेश्वर) हैं। 'तस्य वाचकः प्रणवः' अर्थात उस परमेश्वर का वाचक प्रणव है इस तरह प्रणव अथवा ओम् एवं ब्रह्म में कोई भेद नही हैं। ओम् एक अक्षर हैं। इसका क्षरण अथवा विनाश नही होता हैं।

उच्चारण की विधि–

प्रातः उठकर पवित्र होकर ओमकार ध्वनि का उच्चारण करें। ओम् का उच्चारण पदमाशन, अर्धपदमाशन, सुखाशन, वज्रासन में बैठकर कर सकते हैं। इसका उच्चारण 5, 7, 10, 21 बार अपने समयानुसार कर सकते हैं। ओम् जोर से बोल सकते हैं या धीरे–धीरे बोल सकते हैं ओम जप माला से भी कर सकते हैं।

महत्व व लाभ–

ओम त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा त्रिलोक भूर्भुवः स्वः भूलोक भुवः लोक तथा स्वर्ग लोक का प्रतीक हैं। इसे पदमासन में बैठकर जाप करने से मन को शांति तथा एकाग्रता की प्राप्ति होती हैं। वैज्ञानिको तथा ज्योंतिष्यिों का कहना हैं कि ओम् तथा एकाक्षरी मंत्र का पाठ करने में दांत, नाक, जीभ सभी का उपयोग होता हैं। जिससे हार्मोनल स्त्राव कम होता हैं तथा ग्रंथि स्त्राव को कम करके यह शब्द कई बीमारीयों से रक्षा तथा शरीर के स्त्राव चक्र (कुंडलिनी) को जाग्रत करता हैं। इससे शरीर और मन को एकाग्र करने में मदद मिलेगी। दिल की धड़कन और संचार व्यवस्थित होगा। इससे दूसरी मानसिक बीमारियां दूर होती है। काम करने की शक्ति बड़ जाती है। इसका उच्चारण करने वाला और इसे सुनने वाला दोनों ही लाभांवित होते है। इसके उच्चारण में पवित्रा का ध्यान रखा जाता हैं।

ओम्

चक्र–

बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति में चक्र को मांगलिक प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया हैं। धार्मिक कार्यों और मांगलिक अवसरों पर चक्र बनाना शुभ माना जाता हैं। जन्म एवं विवाह के समय परिवार की ज्येष्ठतम महिला के द्वारा घर के मुख्य द्वार पर एवं पूजा घर में स्वस्तिक के साथ चक्र अंकन किया जाता हैं। इनके अंकन हेतु गेरू का प्रयोग किया जाता हैं। भारतीय धर्म एवं संस्कृति में चक्र संसार का, समय का, सर्वव्यापक सत्ता का, प्रगति का, सूर्य का, अखण्डता का और धर्म का प्रतीक माना गया हैं। वैदिक युग में आर्यो द्वारा यज्ञ के प्रारंभ में चक्र का प्रयोग किया जाता था। वे चक्र को सूर्य का प्रतिनिधि मानते थे। सूर्य काल का प्रतीक हैं, क्योंकि वह चक्राकार घूमता हैं–

द्वादशारं न हि तज्जराय।
वर्वर्ति चक्रपरिघा मृत्सय।।

अर्थात बारह आरों वाला यह चक्र कभी नही घिसता। यह आकाश मण्डल का निरंतर भ्रमण करता रहता हैं। सूर्य चक्राकार घूमता हैं और चक्र का निर्माण करता हैं।

महाभारत के आदिपर्व में इस कालचक्र का प्रतीकात्मक उल्लेख मिलता हैं। ब्रह्मवेत्ता आचार्य वेद का शिष्य उत्तुंक गुरू दक्षिणा के रूप में गुरूपत्नी के समक्ष भेंद के लिये राजा पौष्य की पत्नि के जो कुण्डल लेकर आया था, उसे बीच में ही तक्षक ने चुरा लिया था। अतः उत्तुंक तक्षक का पीछा करते हुए पाताल लोक पहुँचता हैं, जहां उसे विभिन्न प्रकार की आश्चर्यजकन वस्तुंए दिखाई पड़ती हैं। उसमें ही उसे एक घूमता हुआ चक्र भी दिखाई देता हैं। यह चक्र निरंतरता में चलता रहा हैं। इसके भीतर तीन सौ आठ आरे हैं, चौबीस पर्व और इस चक्र को छह कुमार घुमा रहे हैं। यह संपूर्ण विश्व जिनका स्वरूप हैं, ऐसी दो युवतियाँ सदा काले और सफेद तन्तुओं को इधर–उधर चलाती रहती

हैं तथा वे ही संपूर्ण भूतों और समस्त भुवनों को निरंतर संचालन करती हैं। पाताल से लौटने पर उत्तुंक अपने गुरू से चक्र के संबंध में पूछता हैं तब गुरू उसे समझाते हुये कहते हैं-

"ये ते स्त्रियौ धाता विधाता च ये च ते कृ'णाः।

सितास्तन्तवस्ते रात्र्यहनी। तदपि तच्चक्रं द्वादशारं

'ाड्र वै कुमाराः परिवर्तयन्तितेऽपि 'ाड् ऋतवः

द्वादशारा द्वादश मासाः संवत्सरच्श्रक्रम।।"

अर्थात वे जो दो स्त्रियां थी- वे धाता और विधाता हैं। जो काले और सफेद तंतु थें, वे रात और दिन हैं। बारह आरों से युक्त चक्र को जो छह कुमार घुमा रहे थे वे छह ऋतुएँ हैं। बारह महीने ही बारह अरे हैं। संवत्सर ही वह चक्र हैं।

चक्र का भारतीय दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान हैं। बौद्ध धर्म में धर्मचक्र प्रवर्तन, जैन धर्म में सिद्धचक्र, तांत्रिक साधना में श्रीचक्र, सिक्ख धर्म में विश्वविजय का प्रतीक सुरक्षाचक्र और भगवान विशणु का सुदर्शन चक्र तो सर्वविदित हैं, जो सदैव भक्तों का कल्याण करते हैं।

चक्र

वैमाता–

वैमाता का शुद्ध रूप 'वयमाता' हैं, ये आयु सर्वधिनी माता हैं। ऐसी मान्यता है कि इनकी कृपा से नवजात शिशु की आयु वृद्धि होती हैं। इस मान्यता की परिपुष्टि के लिये प्रसूता के शयन कक्ष की भित्ति पर वैमाता की आकृति का काल्पनिक अंकन किया जाता हैं। विधिवत पूजन-अर्चन करने के पश्चात नवजात शिशु की आयु वृद्धि की कामना की जाती है। पण्डित गुणसागर सत्यार्थी लिखते हैं- वैमाता की पुतरिया बनाते समय पहले गुणा का चिन्ह बनाते हैं इसके ऊपर और नीचे की रेखाओं के दोनों सिरों को आड़ी रेखा खींकर जोड़े हैं। नीचे दो रेखाएँ खीचकर पैरों का आकार देते हैं। ऊपरी रेखा के बीचों बीच ताश के पत्ते पर बनी ईट का आकार खड़ा करते हैं, जिसके अंदर आंखें, नाक, मुख, बिन्दी सजाते हैं। यह अंकन प्रसूती के छठवे दिन घर की वयोवृद्ध महिला करती हैं। यह प्रथा बुंदेलखण्ड में अनेक वर्षो से प्रचिलित हैं।

कहा जाता है कि सोलह संस्कारों में एक पुंसवन है- फरेई। गर्भिणी वधू वस्त्रालंकार से सज्जित होकर दोनो हाथों की अंगुलियों में नारियल और उस पर आटे का बना चौमुखा दीपक लेकर अपने 'अटा' में से उतरकर आंगन में आती है। और अपनी वयोवृद्ध श्वसुर क हाथों में उस वंश को सौंप देती है। यह दीप से दीप जलाने की अविच्छिन परंपरा है। बालक के जन्म का छठा दिन है। बुआ आई तो साथ में पीली सींके लाना नही भूली, उसने दीवार पर छठी (षष्ठी) माता की प्रतिकृति बनाई है गोबर से। केसर घोली, अनार की डाल की कलम बनाई और बोली- "आज रात को वैमाता आवेंगी, वे बालक का भाग्यलेख लिखेंगी।"

वैमाता

नौ टिपकी टिपना-

तीन वर्ष में बीजासेन माता का अनुष्ठान संपन्न करने की बुंदेलखण्ड की लोक परंपराएं हैं परन्तु पुत्र जन्म और विवाह संस्कार के पश्चात तो इसे अनिवार्य रूप से इसे करना ही पड़ता हैं। ऐसे विशेष मांगलिक अवसरों के वृहद अनुष्ठान को बुंदेली लोकभाषा में 'पाटा भरना' कहा जाता है। पूजा के लिये सोमवार, शुक्रवार और अष्टमी तिथि शुभ मानी जाती हैं, कहीं-कहीं चर्तुदशी और पूर्णमा की पूजा शुभ मानी जाती हैं। पूजा रात्रि के समय की जाती हैं, इसे रहस्यमय या गोपनीय माना जाता है, इसलिये पूजा के समय परिवार के अतिरिक्त अन्य कोई वहां उपस्थित नही रहता। लकड़ी के एक पटे पर नया लाल कपड़ा बिछा दिया जाता हैं, नौ चौक बना दिये जाते हैं, सामने लोकमाता बीजासेन देवी के प्रतीक रूप में घृत और सिंदूर मिलाकर दीवार पर नौ गोल बिन्दू लगा दिये जाते हैं। जिन्हें नौ टिपकी टीपना कहते हैं। नौ बिन्दुओं के ऊपर बीचों बीच एक पुतरिया (लोकचित्रण में पुतली का आकार) लिखने के भी परंपरा देखने को मिलती हैं। यह पांचवी टिपकी के ठीक ऊपर होती हैं। यही बीजासेन देवी हैं। नौ गोल बिन्दुओं पर कांच के नौ बूंदा (टिकुली) लगाते हैं। प्रसाद के रूप में हलवा के साथ नौ पुड़ियां, नौ चौकों रख दी जाती हैं। उपहार रूप में नौ चूड़िया, नौ पान, नौ सुपाड़ी, नौ इलाईची, नौ प्रकार के मेवा और नौ ही प्रकार की मिठाईयाँ, नौ खूंट के रूप में बीजासेन माई को अर्पित कर दी जाती हैं। दीपक प्रज्वलित रहता हैं। और पूजा करने वाला व्यक्ति मौन रूप से बीजासेन देवी के लिये नौ होम लगाता हैं। माथा टेककर प्रणाम के साथ अनुष्ठान पूरा करता हैं। परिवार का वयोवृद्ध मुखिया परिवार के सदस्यों को प्रसाद देता हैं। जो भी प्रसाद को ग्रहण करता हैं, उसे बीजासेन माता का यह अनुष्ठान जीवनभर करना आवश्यक होता हैं। ऐसी मान्यता हैं कि पूजा पूर्णता एवं सफलता हेतु सौभाग्यवती स्त्रियों को भोजन

कराने की परम्परा हैं। इसे बीजासेनी की सुहागने कहा जाता हैं। ये सुहागने वही स्त्रियां होती हैं, जिनके घर परिवार में इस अनुष्ठान की परंपरा यथावत होती हों, उनके घरों में आने वाली नववधु को परिवार की ओर से बीजासेनी देवी का यंत्र उपहार स्वरूप देने की प्रथा हैं। बीजासेन देवी का यह यंत्र चांदी या सोने का वर्गाकार ताबीज होता हैं, जिसमें प्रतीक रूप में ये नौ बिन्दु उत्कीर्ण रहते हैं। वधु बीजासेनी के इस यंत्र को आजीवन अपने गले में पहनती हैं, जिसे बीजासेन की तबिजिया कहते हैं। लोक जीवन में मांगलिक प्रतीकों में यह बीजासेन का अनुष्ठान गोपनीय रूप में सम्पन्न होने के कारण रहस्य बनकर रह गया हैं। अभी तक इस अनुष्ठान को गंभीरता से विचाणीय विषय के रूप में नही उठाया गया।

बुंदेलखण्ड क्षेत्र में तो बीजासेन देवी के अनेक पूजास्थल हैं- झांसी में बीजासेन माता का मंदिर हैं, टीकमगढ़ में बीजासेन माई की मढ़िया, शिवपुरी जिले के पिछोर में बीजासेन का मंदिर, मालवा क्षेत्र में मन्दसौर के इलाके में बीजासेन देवी के पूजा स्थल हैं। टिमरनी (इटारसी) के निकट गहन वन में एक पहाड़ी के शिखर पर प्राचीन बीजासेन मंदिर लगभग एक हजार वर्ष से भी पुराना हैं। उज्जैन की प्राचीन बस्ती में बीजासेन देवी का प्राचीन मंदिर हैं। जहां आज भी आसन्नप्रसवा स्त्रियों को आशीर्वाद कामना से ले जाकर पूजा अर्चना संपन्न की जाती हैं। महाराष्ट्र के ग्राम्यांचलों में भी बीजासेन माता के पूजा स्थल हैं। आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल ने बताया कि उनकी स्मृति भी बाल्यकाल में सुना बीजासेन माता की पूजा के समय गाया गीत आज भी जीवंत हैं।

“बीजासेन माई मोय दरसन द्येव
बैसवाड़े की माई मोय दरसन द्येव
दरसन द्येव मोय दरसन द्येव।”

इन पंक्तियों से प्रतीत होता है कि पूजा किसी युग में बैसवाड़ा क्षेत्र (गंगा-यमुना का दुआव क्षेत्र) में मूर्त रूप में अवश्य रही होगी। इस प्रकार यह बात हम समझ सकते है कि लोकदेवी बीजासेन का क्षेत्र व्यापक और कालजयी हैं।

नौ टिपकी टिपना

हरियाली अमावस्या-

बुंदेलखण्ड में यह पर्व सावन की अमावस्या को मनाया जाता हैं। श्रावण मास सुख-संमृद्धि और आनंदमयी हरीतिमा का प्रतीक हैं। अपने खेतों की हरी फसल को देखकर कृषक समुदाय फूला नही समाता हैं। किसी कवि की ये काव्य पंक्ति कितनी सटीक हैं।

"हरी फसल के चूनर ओढ़े धरती बनी दुलइया।
सावन दूला और बराती सब हरवारे भइया।।"

बहिनों को अपने अपने मायकों का और अपने भाईयों का स्मरण हो आता हैं। वे अपने भाईयों से मिलने के लिये लालायित होने लगती हैं। भाई भी अपनी बहनों से मिलने को आतुर हो जाते हैं।

"सावन के आगे माह, वीरन मोय लुआवे अइयौ।
मन भरों उछाह, वीरन मोय लुआवे अइयौ।।"

इस अवसर पर मुख्य द्वार के दोनों ओर भित्ती पर बेटियों की आकृति उकेरी जाती हैं। और वधूऐं हल्दी,चावल,पुष्प और प्रसाद अर्पित करके उनका पूजन-अर्चन करती हैं।

हरियाली अमावस्या

कमल-

लोक कलाओं में वृक्षों, पौधों, फूलों आदि का चित्रांकन भी किया जाता हैं। विविध वृक्षों को चित्रित किया जाता हैं, साथ ही विविध फूलो को भी दर्शाया जाता है। किन्तु विशेष रूप से कमल के फूल का चित्रांकन विशेश महत्व रखता हैं। बुंदेलखण्ड क्षेत्र में लगभग प्रत्येक भूमि-भित्ति आलेखन में कमल के फूल का चित्रांकन अवश्य ही किया जाता हैं। कमल को निर्लिप्तता का द्योतक माना जाता हैं और इसी कारण से प्रत्येक आलेखन में इसको स्थान दिया जाता हैं। वृक्षों का सांकेतिक चित्रण भी किया जाता हैं।

कमल

हरछट–

यह त्यौहार भाद्र पद कृष्णपक्ष षष्ठी को मनाया जाता हैं। भगवान श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊ जी का जन्मदिवस है, इस कारण इस पर्व का नाम 'हलषष्ठी' हैं। नारदपुराण में इसे ललिताव्रत कहा गया हैं और अग्निपुराण में इस व्रत को ' अक्षय षष्ठी ' की संज्ञा दी गई हैं। बुंदेलखण्ड में हरछट देवी जी की पूजा महुआ और अचार से की जाती हैं। इस दिन महिलाऐं हल का जोता हुआ अन्य और गाय का दूध ग्रहण नही करती। लोक कथा में गाय, भैंस का दूध मिलाकर बेचने वाली ग्वालिन के शिशु की हल के फाल से मृत्यु हो गयी थी किन्तु सत्यता प्रकट करने पर हरछट मैया की कृपा से ग्वालिन का पुत्र जीवित हो गया था। पूजा के अवसर पर छेबले के पत्ते, जरिया के कांटे और कांस के पौधों का गुच्छा बनाकर प्रस्तुत किया जाता हैं। महिलाऐं समाई के चावलों का उपयोग करती हैं। इस अवसर पर महिलाऐं घर की दीवार पर मटकी सिर पर रखे हुऐ ग्वालिन का चित्रांकन करती हैं। ग्वालिन के आकार में गुणा के चिन्ह बनाकर उसमें ऊपरी भाग पर एक सिर बनाकर उसके ऊपर गोलाकर में एक मटकी बनाते हैं। और एक हाथ मटकी पर रखा हुआ बनाते हैं और नीचे के भाग में दो रेखाऐं बनाकर पैर बनाते हैं और इनकी पूजा करते हैं।

यह पर्व सुख,संतति और संमृद्धि प्रदायक हैं। महिलाओं के मन में इस व्रत के प्रति अटूट आस्था और विश्वास हैं।

बुंदेलखण्ड में इस प्रकार के अनेक मांगलिक पर्व– त्यौहार और व्रत हैं, जिनकी विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से पूजा अर्चना की जाती हैं। बुंदेलखण्ड के कुछ प्रमुख मांगलिक प्रतीकों के उदाहरण प्रस्तुत किये गयें हैं, जो बुंदेलखण्ड की सांस्कृतिक परांपरा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

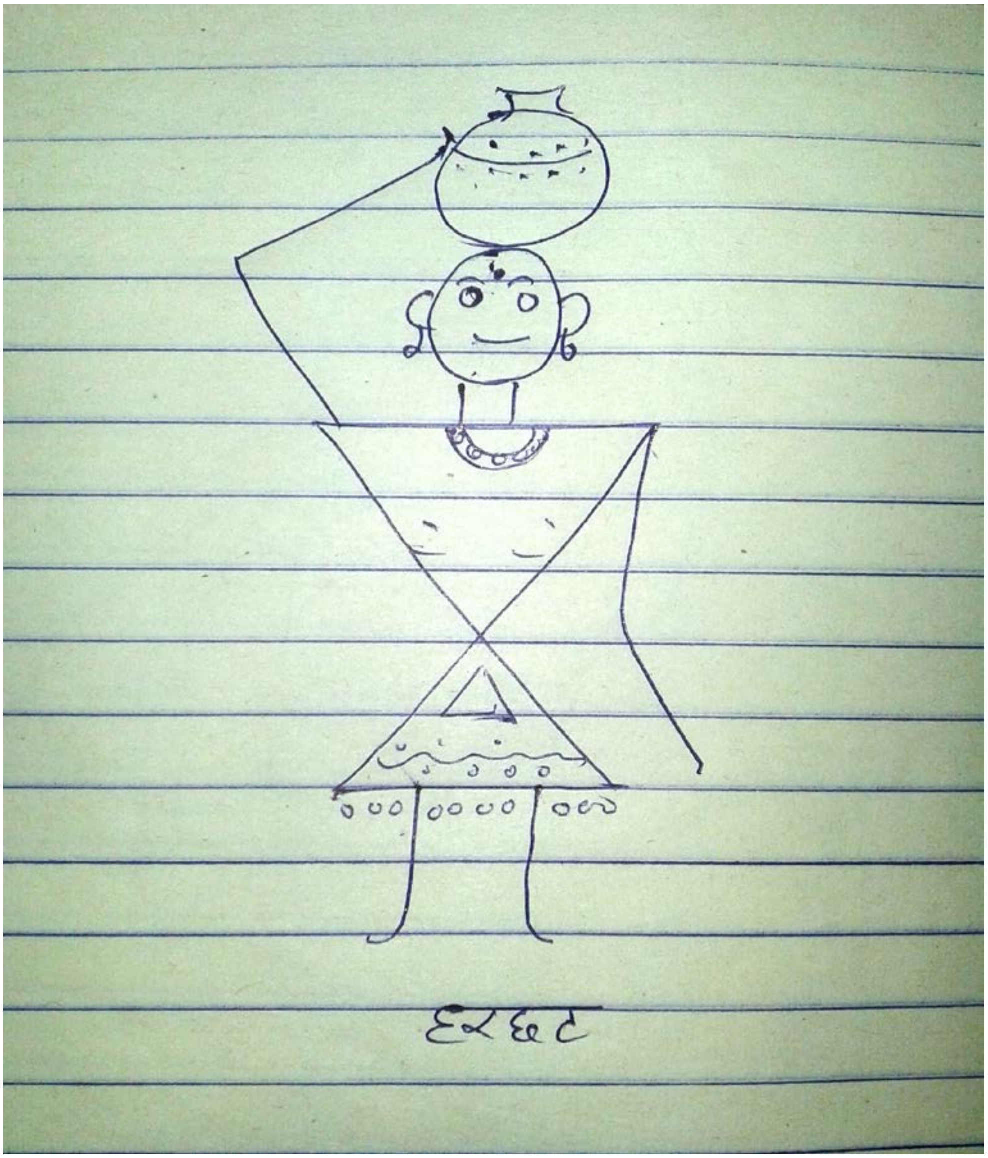

हरछट

चतेऊर-

विवाह क अवसर पर कन्या और वर पक्ष के द्वार की दीवार पर जो भित्ति चित्र बनाया जाता है, उसे 'चतेऊर' कहा जाता हैं। सामान्यतः तीज-त्यौहारों पर चित्रांकन स्त्रियां की करती हैं किन्तु विवाह में चतेऊर लिखने के लिये चतेवरी आता हैं। यह बर्दिया कुम्हारों का वंशानुगत पेशा है। चतेऊरी में सबसे पहले द्वार के ऊपर प्रमुख मंगलकारी विघ्नविनाशक श्री गणेश जी और उनके वाहन 'मूषक' को लिखता है। तद्पश्चात नीले-हरे, लाल और पीले रंगों की रेखाओं द्वारा पूरी दीवार पर बेल, फूल-पत्तियां, गमला, हाथी घोड़ा,कलश, शुक, मीन, मण्डप इत्यादि का चित्रांकन करता हैं। इसमें अंकित हाथी ऐश्वर्य और शक्ति का, अश्वगति एवं शक्ति का, कलश जीवन की पूर्णता का, शुक प्रेम का और मीन सम्पन्नता व संवेग आदि का प्रतीक हैं। कन्यापक्ष की चतेऊर में वर पक्ष की चतेऊर से अधिक अंकन होता हैं।

यद्यपि बुंदेलखण्ड में विभिन्न अनुष्ठानों पर्वो, जन्म- विवाह आदि शुभ अवसरों के अलग अलग प्रतीक हैं। पर कुछ प्रतीक सभी तरह के अनुष्ठानों, पूजाओं संस्कारों में प्रचिलित हैं। जैसे स्वस्तिक, नारियल, आम, दूर्वा, दीपक आदि पर यह प्रतीक अवसरानुसार अपना अलग अर्थ रखते है। विवाह के अवसर पर अपनाये जाने वाले प्रतीक भी कुछ तो अलग हैं, पर कुछ सभी अनुष्ठानों में प्रचिलित हैं, जो विवाह में अपना विशिष्ट अभिप्राय रखते हैं। समाज के लिये किसी न किसी रूप में उपयोगी गुण, स्वभाव से साम्य रखने वाले ये प्रतीक सभी वर्ग को सर्वसुलभ होते हैं। यद्यपि हल्दी, चावल, सिंदूर, सुपाड़ी प्रतीकात्मक हैं, किन्तु इनकी गणना भारतीय संस्कृति के प्रतीकों में प्रायः नही मिलती हैं, जबकि कोई भी धार्मिक अनुष्ठान, पूजा इनके बिना संपन्न नही होती हैं। ये हिन्दू संस्कृति के सर्वमान्य सार्वधिक महत्व रखने वाले मांगलिक प्रतीक हैं। विवाह में प्रारंभ से लेकर अंत तक सभी प्रकार के

पूजन और रस्मों में इनका प्रयोग अपना अलग ही महत्व और प्रतीकार्थ रखता है। इसलिये विवाह के मांगलिक प्रतीकों में इनकी गणना करना हमें उचित लगा।

यह भी दृष्टव्य है कि अन्य व्रत, पर्वो, अनुष्ठानों में जहा दो-चार प्रतीक ही होते हैं, वहां विवाह संस्कार में प्रतीकों की भरमार हैं। विवाह की एक-एक रस्म में अनेकानेक प्रतीक गुंथे हुऐ हैं। उनमें से यहां प्रमुख मांगलिक प्रतीक विवेचित हैं।

चतेऊर

नाग–

बुंदेलखण्ड में 'नाग पंचमी' के दिन दरवाजे पर नागों का काले रंग से अंकन किया जाता है। और उनकी पूजा की जाती हैं। और इसमें द्वार के एक तरफ नाग एंव एक तरफ नागिन बनाये जाते हैं, यह चित्रांकन अलग–अलग समाज में अलग–अलग तरह से बनाये जाते हैं। नागपंचमी के दिन घर की बहू–बेटियां सुबह जल्दी उठकर स्नान करने के बाद कोयला को घिसकर उसमें गोंद मिलाकर रंग तैयार करती है। उसी काले रंग पुरुष तूलीकाओं से नाग का चित्र अंकित करते हैं। इनका चित्रांकन केवल पुरूषों के द्वारा किया जाता हैं लेकिन इनकी पूजा सभी लोग करते हैं। इनके चित्रों में एक विशेष होती हैं कि यह बिना तूलिका उठाये कई कुण्डली के नाग बनाये जाते हैं। इन चित्रों में नाग मध्य भाग में और आस–पास चांद–सूरज, नीचे के भाग में बिच्छू इत्यादि भी चित्रित किये जाते हैं लेकिन ये प्रतिकात्मक ही होते है। नाग का पूरा चित्र बन जाने पर नाग की आँखें खोलने का प्रावधान है। उसे प्राण प्रतिष्ठा की संज्ञा दी गई हैं। इसकी प्राण प्रतिष्ठा के बाद दूध दही का भोग लगाया जाता है। कपास की पोनी के द्वारा कुम–कुम अक्षत से पूजा की जाती हैं।

बाजार में नागों के बने हुए कागज के 'पने' बेचे जाते हैं और दरवाजे पर सपेरे द्वारा नाग की पूजा की जाती हैं। कई लोग अपने बच्चों को नाग का स्पर्स भी कराते हैं एवं उसके गले में नाग का कोड़ा डालकर उसके अनिष्ट को टालने का प्रयास भी करते हैं। 'पूजने' या देवत्व के रूप में मान्यता के पीछे दो ही भावनाऐं प्रमुख रूप से देखने को मिलती है। प्रथम कृपा– दयालुता या आशीर्वाद प्रदान करने की भावना, दूसरी भयभीत रहने के कारण। वन्य प्रधान जीवनकाल में नाग प्रायः निकलते रहते थे और उनके डसने से व्यक्तियों की

मृत्यु हो जाती थी। अतः व्यक्तियों ने भय के कारण नागों को पूजना आंरभ कर दिया। वेदों में भी नाग पूजा के विवरण मिलते है।

बुंदेलखण्ड में नाग पूजा परंपरा के साथ नाग के काट लेने पर उसके जहर को उतारने के लिये मंत्र भी प्रचलित थे। इन मंत्रो में हनुमान जी का नाम 'वीरस्वरूप' लिखा जाता था। नाग यदि हानिकारक देव था तो हनुमानजी प्रत्येक संकटकाल में जनता की रक्षा करने वाले देव थे। ये 'नाग जहर' उतारने के मंत्रों के उल्लेख वाली पाण्डूलिपियां बुंदेलखण्ड अंचल में अधिक मिलती हैं। स्वंय ने ऐसी कई पाण्डूलिपियां मंदिरों में तथा पण्डितों के यहां भी देखी हैं। ये पाण्डूलिपियां इस बात की द्योतक है कि नाग पूजा आम आदमी के बीच भय के कारण सर्वव्यापक थी और आम आदमी को यह भी विश्वास था कि इनके डंस लेने पर मंत्रों से नाग का जहर उतर जाता हैं। नाग के जहर उतारने का एक मंत्र इस प्रकार हैं-

"डूंड़ा महुआ झख झालरौ सुआ सांप गुन्नाय
नाग मार नागिन दुहौं विष की रांधौ खीर उठौ
डंक भोजन करौ संग जात है दूर संख चूर की ईडुरी
गज मोतिन के हार पदमा पानी नी करी लंका करी जुहार
लंका सो कोट समुद्र सी खाई, उठ जाग चेत संहार हो तोय
हनुमंत वीर की धुआई मेरी भक्ति गुरू की सत्ति
फुरै मंत्र इश्वरीवाच, अ, छू।"

सारांशतया कहा जा सकता है कि बुंदेलखण्ड में नाग पूजा लोक आस्था एवं वैदिक विश्वास दोनो से संबंध रखने वाली पूजा हैं। नाग भय एवं शक्ति दोनों का प्रतीक हैं। एक तरफ नाग को अचानक एकांत में शरीर में सहर उठने लगती हैं , तो दूसरी ओर देवत्व स्वरूप में उसकी पूजा करते समय शक्ति का

बोध होता हैं। बुंदेलखण्ड अंचल वन प्रधान क्षेत्र के रूप में सदियों से जाना जाता था। यहा गर्मी भी बहुत पड़ती थी। नाग देवता के लिये यह दोनो ही प्राकृतिक स्थितियां अनुकूल पड़ती थी। अतः बुंदेलखण्ड में नाग पूजा का प्रचलन भी सदियों से चला आ रहा हैं और आज भी 'नागपूजा' प्राचीन मान्यताओं के साथ यथावत् है।

नाग

सवनाही-

सावन माह प्रारंभ होने के पूर्व ग्रामीण महिलायें अपने घरों व कोठो की बाहरी दीवारों पर 'सवनाही' का अंकन करती हैं। सवनाही क्यों? यह एक विचारणीय प्रश्न हैं। हम सभी जानते है कि सावन आने तक खूब बारिश हो जाती है। नदी-नालों का पानी दूषित हो जाता हैं, जिससे संक्रामक बीमारियां फैलने का अंदेशा रहता हैं। ऐसी भी लोक मान्यता है कि इसी समय दुष्प्रवित्यिाँ जैसे टोना-टोटका, भूत-प्रेत आदि सक्रिय होते हैं। अतः लोग इनसे बचने के लिये 'सवनाही' लिखते हैं। सवनाही के रूप में महिलायें गोबर लेकर अपनी अंगुलियों से सारे घर की दीवारों में रक्षा कवच के रूप में मोटी लकीर खीचतें हैं। पुतलियों व पशुओं के चित्र बनाते हैं।

पुतलियां कुछ और नही, इनका चित्रांकन प्रतीक रूप में हमारी संतान (बेटे-बेटियां) की मंगल कामना तथा पशु का चित्र पशु धन की रक्षा के निमित्य बनाया जाता हैं। संतान सुखी है तो मनुष्य का सबसे बड़ा सुख हैं। संतान नही तो धन-दौलत, सगे-संबंधी सारी दुनिया बेकार हैं। यह संतान की सुख-संमृद्धि की कामना का प्रतीक हैं।

सावन में प्रथम सोमवार को सवनाही वरोया जाता हैं, जिसमें दुष्ट आत्माओं को गांव की सीमा में प्रवेश न करने का लोक-उपक्रम किया जाता हैं। इसमें पूजा-प्रार्थना के माध्यम से सम्पूर्ण गांव समाज के मंगल की कामना की जाती हैं। अतः सवनाही लोक मंगल की भावना से प्रेरित भित्ति चित्र हैं।

सवनाही

मौरता व विजनी-

भित्ति लेखन में बुंदेलखण्ड में पुत्र विवाह में 'मौरता' व गहोई बनियों के यहां मौरता के साथ ही विजनी लिखने की परंपरा हैं। विजनी केवल घर के प्रवेश द्वार के ऊपर लिखी जाती हैं। यह पन्द्रह त्रिभुज और सात कमूरों की बनती हैं जब बारात कन्या पक्ष के घर चली जाती है तो घर की महिलाऐं कुल पूज्य देवता के स्थान, देवी के मंदिर एवं घर के प्रवेश द्वार के दोनों तरफ दीवार पर ग्योरी के रंग का चौखटा बनाकर उसके ऊपर त्रिभुज बनाकर मानवाकृति बनाती हैं। इसे मौरता लिखना कहते हैं। मौरता तीन मौर धारण कर परिणय सूत्र बांधकर, सृष्टि की संरचना करने वाले ग्रह रक्षक देवता स्वरूप वर-वधू के शुभागन पर स्वागत का प्रतीक हैं।

सृष्टि के कारक स्त्री-पुरूष का पति-पत्नि के रूप में अविच्छिन्न पवित्र गठबंधन का प्रतीक विवाह, हिन्दू संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य माना जाने वाला संस्कार हैं। हिन्दूओं के सोलह संस्कारों में विवाह ही एक मात्र ऐसा संस्कार हैं, जो अनेक शास्त्रीय, लौकिक पूजाओं, लोक रीतियों, कच्ची-पक्की, मिर्जापुरी पंगतों, गीतों-गारियों, हंसी-ठिठोलियों, गाजे-बाजे, शहनाई, रमतूला की स्वरलहरियों से तिरता हुआ आस-पास के परिवेश को आनंदातिरेक में डूबोकर कई दिनों तक चलता हैं। इसमें सभी जाति-वर्गो के स्त्री-पुरूषों तथा परिवार के सभी नाते-रिश्तेदारों की किसी न किसी रूप में भागीदारी होती हैं और उनकों सम्मान्नीय स्थान दिया जाता हैं। इसमें सभी प्रकार के खाद्‌य पदार्थो व ग्रहस्थी के उपयोग में आने वाली सभी प्रकार की वस्तुओं की आवश्कता पड़ती हैं। सभी प्रकार के देवी देवताओं और पूर्वजों का स्मरण किया जाता हैं। सगाई से लेकर लगुन,मटियाना, तेल-हल्दी, अरगा, मड़वा, चीकट या भात, द्वाराचार, चढ़ाव, कन्यादान, भांवर, पांव पखराई, धान

बुआई, कुंवरकलेवा, कंकन छोरना, मौ मड़ई अथवा फाग, दायजा सौंपना, विदा, वधू के ससुराल आने पर मौरता, खिचड़ी नपाई आदि अनेक रीति–रस्में होती हैं। इन रीति–रस्मों से जुड़े अनेकानेक मांगलिक प्रतीक है, जो गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाले वर–वधू को दांपत्य सुख भोगते हुए लोकहित की भावना से युक्त हो जो समाजोंमुखी होने का संदेश देते हुए। इन प्रथाओं के महत्व को रेखांकित करते हैं।

अंचल के अनुसार इनमें अंतर भी मिलता हैं इनका अंकन कर विभिन्न ज्यामितिक रूपों को सुंदर रंगों से सजाकर लोक परंपरा जैसे भूमि का श्रृंगार करती हैं और भित्ति पर अंकित चित्र तक हमारे अवधान को ले जाने का एक आह्वान करती है। भित्ति चित्रांकन की दिव्य प्रकृति का भूमि पर श्रृंगार किया जाता हैं। लोकचित्रों की इन ज्यामितिक संरचनाओं का दिशा बोधक और वस्तु सांकेतिक अर्थ हैं। विभिन्न रेखाओं और कोणों का यह ज्यामितिक विश्वप्रतीकात्मक रैखिक समष्टी हैं। द्वार और आंगन में वे सबसे पहले आतिथ्य की स्वस्ति करते हैं और सारी सृष्टि का स्वागत करते हैं।

मौरता व विजनी

iV fp= ,o dN vU; fp=

vuØe%&

- ❖ चौक
- ❖ उरैन
- ❖ जिरोती
- ❖ सूर्य एवं चन्द्रमा
- ❖ लंगूर वीर
- ❖ महावर
- ❖ आठे कन्हैया
- ❖ करवा चौथ माता
- ❖ गुदना
- ❖ थापा (हांथे)
- ❖ रंगोली
- ❖ दिवारी का थापा
- ❖ दूल्हा देव

लोक चित्रकला

सृष्टि की रचना इस लौकिक जगत की सर्वप्रथम कला हैं। ईश्वर की आलौकिक लीला एवं दिव्य कला से समस्त सजीव प्राणी तथा प्रकृति का निर्माण हुआ हैं। संपूर्ण संसार ईश्वर की चेतना से सरावोर हैं। ईश्वरीय शक्ति का दिव्य भाव सृष्टि का पोषण करता हैं तथा उसकी रक्षा करता हैं। चराचर जगत का सतत् विकास एवं मानव जीवन का उत्थान ईश्वर के प्रकाश द्वारा होता हैं। निराकार ईश्वर के सुन्दर स्वरूप तथा जगत के अद्‌भुत साकार रूप की अनुभूति से मनुष्य ह्रदय में कला की प्रेरणा उत्पन्न हुई और मनुष्य समाज द्वारा कला की उत्पत्ति हुई हैं। कला की दृष्टि पाकर मानव ह्रदय आत्मिक आंनद से भर उठता हैं। आदिम समाज के सृजनशील तथा संवेदनशील मनुष्य के मन में ईश्वर, सूर्य, चन्द्र, प्रकृति इत्यादि के प्रति भय, कौतूहल, रहस्य तथा आदर की भावना थी भय-आदर की यही भावना बाद में पूजाभाव में परिवर्तित हुई। धार्मिक विश्वास के कारण पूजा प्रतीकों की अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य ने कला को माध्यम बनाया।

कला शब्द की उत्पत्ति विद्यवानों ने संस्कृत की कल् धातु से मानी हैं, जिसका अर्थ सुन्दर मधुर, कोमल या सुख देने वाला है। कला से अभिप्राय ऐसे कौशल या चमत्कार से हैं, जिसके द्वारा जीवन में सौन्दर्य तथा समृद्धि का संचार होता हैं। कला जीवन के सत्य शिव एवं सुंदर की आत्मीय अनुभूति एवं अभिव्यक्ति हैं। शिल्प, हुनर या कार्यकौशल आदि के अर्थ में कला शब्द का प्रयोग भारतमुनि के नाट्‌यशास्त्र में हुआ हैं। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'कला भावों का पृथ्वी पर अवतार हैं। ' श्री मैथिलीशरण गुप्त ने कला को शिवत्व की उपलब्धि के लिए सत्य की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति मान हैं। टॉलस्टाय के विचार में अपने ही भावों को रंग,रूप,रेखा,ध्वनि, क्रिया द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करना कि उसे देखने-सुनने में भी वही भाव उत्पन्न हो जाये, कला हैं। प्लेटो ने कला को प्रकृति एवं सत्य की अनुकृति कहा। इसी सत्य की अनुकृति संसार के जड़-चेतन सभी रूपों में दिखाई देती हैं अथवा जड़-चेतन का कलात्मक अंकन सर्वव्यापक सत्य की अनुकृति हैं।

धर्म के स्वरूप को समझने में भी कला सहायक हैं। कला और धर्म परिपूरक पहलू हैं तथा इनका अस्तित्व एक-दूसरे पर आश्रित हैं। धर्म ही समस्त कार्यकलापों का संबल हैं,

जो सामाजिक हित और मंगलकामना की आधारशिला पर स्थित हैं। जीवनधर्म की अनिवार्यता तथा देवी-देवताओं के प्रति विश्वास का बोध हमें प्रतीक चिन्ह सहज रूप में करा देते हैं। धर्म प्रतीकों और लोककला के अभिप्राय को एक बिन्दू पर लाता हैं। मांगलिक प्रतीक असीम, निराकार, अव्यक्त करने के सजीव साधन हैं। इन प्रतीको में सनातन परंपराओं, ईश्वर के प्रति विश्वास, आशीर्वाद की कामना एवं समृद्धि की आकांक्षा का अभाव हैं। मनुष्य के निश्छल भाव द्वारा अंकित ये प्रतीक मन को गहराइयों से छूकर संवेदनाएँ जागृत करते हैं। मांगलिक आकृतिओं का प्रतिकात्मक अंकन लोक मानस की सरलता से भरी आध्यात्मिक उच्चता एवं उदारता को व्यक्त करते हैं। जन-जीवन में ईश्वरीय शक्ति के प्रति आस्था का विकास करने वाले मांगलिक प्रतीक मानव जीवन में, चेतना में समाहित हैं। इन प्रतीकों के लोककल्याणकारी भाव से ही मनुष्य को धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अन्य सांसारिक कार्यो को करने की प्रेरणा मिलती हैं। ओजस्विता, संघर्ष एवं साहस के प्रतीक इन चिन्हों में विषमतम परिस्थतियों में अपने अस्तित्व को सिद्ध करने की मनुष्य की जीवन-गाथा साकार हुई हैं। सांस्कृतिक जीवन में महत्व के साथ स्थापित ये चिन्ह राष्ट्र, समाज, जनजीवन की समृद्धि, सम्पन्नता एवं सुख शांति के प्रतीक हैं।

मनुष्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के ओजस्वी रूप ये प्रतीक संस्कारों द्वारा परिष्कृत और परिमार्जित होते हैं। सहज और अनगढ़ स्वरूप में ये प्रतीक मन को आह्वाद और मंगलमयी भावनाओं से पूरित करते हैं। अतः मांगलिक प्रतीकों में प्रकृति तत्व, निर्मलता, यर्थाथता, जीवन संदेश, अलौकिक अनुभूति एवं परंपरागत कर्मरत मानव जाति के श्रेय एवं प्रेय का भाव है।

मांगलिक प्रतीक कलात्मक अंकन हैं। इन प्रतीकों का स्वरूप इतना सरल और ह्रदयग्राही होता हैं कि भले ही जीवन के गूढ़तम रहस्य वे व्यंजित न कर सकें, पर निष्ठा की गहराई में प्रतीकों की रेखाएँ सजीव चित्र उपस्थित कर देती हैं। इन प्रतीकों के सौन्दर्य में झांकने के लिए तर्क-वितर्क की नही, ह्रदय की संवेदनशीलता की आवश्यकता होती हैं। मंगलमयी कलाकृतियों में जीवन स्वभाविक क्रिया एवं आत्मचेतना सजग होती हैं। जीवन के उत्थान-पतन, कला-भावना, जय-पराजय, प्रेम-विरह, श्रृद्धा-भक्ति की अनेक स्मृतियाँ ये प्रतीक संजोय रहते हैं। मांगलिक प्रतीक युग-युग से नीति, सदाचार, धर्म

तथा व्यवहार की शिक्षा देते हैं। जीवन के आचार-विचार, अतीत-वर्तमान को जोड़ने, भारतीय जीवन की शुभता, सुख-मंगल को प्रकट करने वाले ये मांगलिक प्रतीक हमारी धरोहर हैं।

- कला परंपरा में प्रयुक्त प्रतीक
- वाचिक परंपरा में प्रयुक्त प्रतीक
- लोककला व्यवहार में प्रयुक्त प्रतीक

कला परंपरा दो प्रकार की होती हैं, आंकिक और आंगिक। आंकिक रूपाकार कला हैं। इसमें भाषा, चित्र, शिल्प, शरीर आलेखन और ज्यामितीय कला समाहित है। रंग, रेखा तथा विभिन्न माध्यमों से बनाये जाने वाले चित्र और उद्रेखन है। शिल्पों में हाथ से बनायी जाने वाली कलात्मक, आनुष्ठानिक, उपयोगी और मनोरंजन के लिये बनायी जाने वाली वस्तुएं हैं। शरीर आलेखन में गुदना, मेंहदी लगाना, विभिन्न तरीकों से मुख, नैन, हाथ, पैर सज्जा है। ज्यामितीय कला में बिन्दू, रेखा, त्रिभुज, चर्तुभुज, षट्कोण, अष्ठकोण आदि से बनी आकृति और अलंकरण चित्र और आकृतियाँ हैं। उद्रेखन भित्ति और लकड़ी की वस्तुओं पर उभरे या गहरे चित्र होते है, जिन्हे अंग्रेजी में रिलीफ वर्क कहा जाता हैं। रिलीफ वर्क में विभिन्न आकृतियों और अलंकरणों का महत्व हैं।

द्वितीय सूचना में (Second report) शोध किये गये भित्ती चित्रों(दीवार पर बने चित्रों) का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया था । बुन्देलखंड में प्रयोग होने के साथ-साथ इन चित्रों का प्रयोग अन्य क्षेत्रों में भी किया जाता है परन्तु इन चित्रों का आकार, चित्रण बनाने का माध्यम में अन्तर होता है इसके साथ ही इनको बनाने का विचार और उद्देश्य व विधि विधान में भी अन्तर होता है इसलिये इन सभी का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है।

द्वितीय सूचना (Second report) में भित्ती चित्रों का वर्णन किया गया था और तृतीय सूचना (Third report) में पठ चित्रों व शरीर के अंगों या कागज, वस्त्रों के अलावा कुछ भित्ति चित्र आदि भी बनाये जाने वाले चित्रों का वर्णन किया जा रहा है

इनके अलावा चौथी सूचना (Fourth report) में अन्य चित्रों व आगे की अवधि में शोध किये गये चित्रों का वर्णन किया जायेगा ।

चौक –

बुन्देलखंड में शुभ अवसरों पर की जाने वाली कोई भी पूजा बिना चौक के सम्पन्न नहीं होती है। महिलायें पूजा स्थल को गोबर से लीपती हैं और उस पर पटा रखकर आटे या चांवल को पीसकर बनाये गये ऐपन से चौक पूरती हैं । सामान्यतः चौक परिवार की स्त्रियाँ ही पूरती हैं, पर विवाह में लगुन पर एवं मड़वा के नीचे ब्राम्हण चौक पूरता है। विवाह में पूरा जाने वाला चौक सामान्य रूप में अष्टदल या अर्थात् आठ दलों वाला होता है भारतीय संस्कृति में आठ संख्या का बहुत महत्व है – अष्ट सिध्दि, अष्ट दिक्पाल, अष्ट चक्र, योग के अष्टांग, अष्टऋषि, अष्ट दिशा आदि के प्रतीक हैं । चौक के माध्यम से देव – पितरों का आवाहन कर उन्हें आसन दिया जाता है । पूजा अर्चना के बाद सुहागवति स्त्रियां आंचल के छोर को चौक से स्पर्श कर अपने परिवार के सुख-शांति की कामना करती हुई दण्डवत् प्रणाम करती हैं इसे चौक लौटना कहा जाता है । चूँकि देवताओं के बैठने से वह स्थान पवित्र हो जाता है, अतः चौक को झाडू से न बुहार कर हाथ से समेंट कर चौक के आटे को घर में लगे पौधों के गमले में अथवा पूजन सामग्री के साथ जलाशय में विसर्जित किया जाता है ।

चौक स्वस्तिक का लोकरूप है। चौक को सांतिया भी कहते हैं। स्वस्तिक से चौक की आकृति थोड़ी भिन्न होती है चौक दो खड़ी और दो आड़ी रेखाओं से बनता है। स्वस्तिक की चार भुजायें होती है। वहीं चौक की आठ भुजायें होती हैं चौक या सांतिया मान-मन्नत शुभ मंगल कार्यो में बनाया जाता है। सांतिया का शुध्द स्वरूप आगे चलकर स्वस्तिक बना होगा चौक की आठ भुजायें आठ दिशाओं पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैर्ऋत्य, ईशान, वायव्य का प्रतीक है। चौक की आठ भुजायें आठ तीर्थो के प्रतीक हैं। चौक के मध्य घर में समस्त ब्रम्हाण्ड की कल्पना की जाती है। शरीर में जो आत्मा का स्थान है वही भारतीय लोक संस्कृति में चौक का स्थान है चौक के कारण घर में बाहरी बाधायें प्रवेश नही करती हैं चौक के बीच की खाली जगह भूमि और आकाश है –

लीप्या की छाव्या म्हारा ओटला रनादेव माय ,
नई ओ म्हारो चउक की मोडण हार खादेव माय।

हे माँ! मेरा साफ-सुथरा ओटला है । उसे मैंने लीप कर सुन्दर बनाया है। उस पर चौक बनाया है । इस चौक को मिटाने वाला एक बच्चा मुझे प्रदान करो।

माना जाता है कि छत्तीसगढ़ में चौक पूरने की अपनी विशिष्ट परंपरा है चौक माध्यम से अतिथि अथवा देव आवाहन कर उन्हें आशन देने की मनोभावना प्रकट होती है अतः चौक पूरने का उद्देश्य पवित्रता से भी है चौक पूरने की कला से नारी के मनो भावों द्वारा उसके सौन्दर्य बोध का गुण भी उजागर होता है। तभी तो लोकगीतों में यह गाया जाता है -

आओ आओ बिरजो हो महादेव
लोट म माढे है पानी
सुरहिन गइया के गोवर मंगायेंव।
मोतियन चौक पुरायेंव।
रूप के बाती लगायेंव हो।।

चौक पूरना केवल साज-सज्जा का आधार नहीं है बल्कि यह भक्ति भाव, धार्मिक निष्ठा की अभिव्यक्ति है। चौक पूरने में विभिन्न आकृतियों का निर्माण किया जाता है। इसके लिए आटे का प्रयोग किया जाता है लोकसंस्कृति हो या विवाह संस्कृति, चौक शुभ का प्रतीक है चौक धरती माँ की गोदी है जहां बैठकर सुख मिलता है। चौक वर्गाकार या आयताकार पंक्तियों के माध्यम से बनाया जाता है ये आकार संपूर्णता के प्रतीक है। विवाह मंडप या पूजा में चौक पूरकर ही कार्य संपन्न किये जाते है पितृ पक्ष में ओरवाती लीपकर, चौक पूरकर फूल विछाकर पितरों को आसन दिया जाता है । ऐसा भी विश्वास है कि बिना चौक पूरे कोई मांगलिक कार्य फलदायी नहीं होता है।

चौक के माध्यम से अतिथि देव का आवाहन कर उन्हें आसन देने की मनभावना प्रकट होती है। देवगण जिस स्थान पर आसन ग्रहण करतें है, वह स्थान पवित्र हो जाता है और उस स्थान की रज से अनिष्ट का नाश होता है। इसलिऐ पूजा अर्चना के उपरांत सुहागिन स्त्रियाँ अपने पति की दीर्घायु एवं संतान के उज्जवल भविष्य हेतु अपने आंचल के छोर से चौक को अंचराती हैं। चौक पूरने में जगत् की कल्पना साकार हो उठती है।

चौक

उरैन-

बुन्देलखंड में शुभ अवसरों पर एवं पितृपक्ष में घर के मुख्य द्वार की भूमि पर उरैन डालने की प्रथा है। उस पर चौक बनाया जाता है। प्रकृति से प्रभावित मानव ने सहज भाव से दैवी शक्तियों पर विश्वास कर लिया और उन्हें प्रतीक चिन्हों के रूप में चित्रित कर उनकी आराधना की । धर्म-कर्म प्रधान आध्यात्मवादी युग में वेदमंत्रों, शास्त्रों, उपनिष्दों, ब्रम्हसूत्र और इसी कोटी के अनेक ग्रंथों में कला के प्रतीकात्माक प्रतिमानों के द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति एवं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग सुझाया गया है।

उरैन बुंदेलखंड में अपने घर के सदस्यों की एवं धन व मंगल की कामना के लिये बनाये जाती है। यह घर की महिलाओं द्वारा बनाया जाता है। वह सुबह ब्रम्ह मुहुर्त में उठकर नहा कर व साफ स्वच्छ होकर घर के द्वार व चौखट के यहां गोबर से लीप कर दरवाजे के दोंनों कोंनों पर गेंहू के आटे से बनाती है व जिसको बनाने के बाद उस पर दिया जला कर रखती है और फूलों से पूजन करती है। उरैन चौकनुमा भी बनाये जाते है। इसको बनाने के पश्चात् भगवान की पूजा पाठ की जाती है। इसके बनाने से घर के द्वार पर लक्ष्मी का आगमन होता है और घर का मंगल होता है व विपत्तियों का नाश होता है। इसलिये यह किसी त्योहार विशेष पर न बनाकर रोज बनाये जाते है।

सामाजिक-धार्मिक पर्व त्योहार और अनुष्ठानों के अवसर पर लोक चित्रकला के भिन्न-भिन्न प्रतीक चित्रित किये जाने की परम्परा आज भी प्रचलन में है। त्योहारों के चित्रांकन में जन-सामान्य की सहज भावाभिव्यक्ति, आकाक्षां और सुखःदुख की कथा निहित होती है। कुछ पर्वो पर मांगलिक प्रतीकों की रचना इस तरह से होती है।

ठरैन

दिवारी का हाथा-

बुंदेलखंड में दिवाली को दिवारी कहा जाता है। दिवारी पर हाथा का विशेष महत्व है यह त्यौहार सुख और समृध्दि का त्यौहार है। दिवारी पर सभी लोग घरों की साफ सफाई करते है और माता लक्ष्मी की पूजा करते है। ऐसे ही यादव जाति के लोग अपने पास में गायों को रखते है और उनके हित व सुख की कामना करते है। ये लोग दिवारी के समय तैयार होकर पगड़ी पहन कर व लट्ठ लेकर अपने इष्ट देव के समक्ष नृत्य करते है। और इस नृत्य को बरेदी नृत्य कहते और ये अपनी गायों को नेहलाकर व साफ करके उन्हें महावर, हरे, लाल रंगो से दीयों को व हाथों को गायों पर चित्रित करते है। और अपने हाथों के पंजो से भी चित्रित करते है इन हाथों के चित्रों ही हाथा कहते है । को द्वार के पास में हल्दी के हाथा को भी लगाया जाता है। जिसे दिवारी का हाथा नाम दिया गया है। गायों को सजाने के पश्चात् गायों की पूजा करते है । छत्तीसगढ़ में भी इसको को विशेष महत्व दिया जाता है यहाँ पर भी इस समय यादव जाति के लोग ही गायों को सोहई बांधते हैं और गोवंश तथा अपने स्वामी की हित कामना के दोहे पढ़ते हैं। इसी समय राउत की पत्नी मालिक के घर कोठी (अन्नागार) व कोठा में भित्तिचित्र लिखती है। यह भित्तिचित्र बड़ा ही कलात्मक होता है। इसे वह चूड़ी रंग ,स्याही , भेंगरा पत्ती या सेमी की पत्तियों से रंग निकालकर बनाती है। शाम को राउत जब गाय-भैंस को सोहई बांधने आता है, तब गृहस्वामिनी द्वारा दान दिये अन्न में गोबर की बड़ी गोली बनाकर उसमें अन्न मिश्रित कर राउताइन द्वारा लिखे भित्तिचित्र में निम्न दोहा उच्चारित कर प्रक्षेपित करता है -

हरियर चक्रचंदन ,हरियर गोबर भिना ,
गाय-गाय कोठा भरे ,बरदा भए सौ तिनाँ।

एक सेवक द्वारा मालिक की सुख-समृध्दि की कामना लोक की उदात्त भावना का परिचायक है। कोठी और कोठा तो लोकसमाज का जीवन रक्षक है। क्योंकि उसके सपने, उसकी आशाएँ यहीं प्रतिफलित होती हैं। इस प्रकार कोठी और कोठा में अंकित भित्तिचित्र भी लोकमंगल की भावना का चित्रांकन है।

दिवारी का हाथा

थापा (हांथे)–

थापा भारत में अति प्राचीन काल से एक मांगलिक प्रतीक हैं। थापा व्यक्ति के पाँचों अंगुलियों की छाप है। अतः बुंदेलखंड में इसे हाथे कहा जाता है। इसका उल्लेख प्राचीन संस्कृत ग्रंथों जैसे कादम्बरी, हर्षचरित एवं मृच्छकटिक आदि में मिलता है। मंदसौर स्तम्भ के अभिलेख में भी इसका जिक्र है। शिल्पकला में थापे उत्कीर्ण किये गये है। भीमबेटिका जैसे अत्यंत प्राचीन और प्रागैतिहासिक शैलाश्रयों और गुहचित्रों में इसकी उपस्थिति है। तक्षशिला की खुदाई में अनेक पंचमार्क सिक्कों के ऊपर पंचागुल चिन्ह अंकित पाये है। यह प्रमाणिकता और पहचान का चिन्ह भी है। अनेकानेक सामाजिक और मांगलिक कार्यो जैसे-पुत्रजन्म, गृहप्रवेश, विवाह आदि के समय पानी में घोलकर ऐपन-हल्दी, आलते या लाल रंग से द्वार तथा वस्त्रों पर हांथे लगाये जाते है।

बुंदेलखंड में विवाह के अवसर पर हल्दी के ही हांथे लगते है, हल्दी में ऐपन भी मिला लेते हैं। विवाह संस्कार पर बुंदेलखंड में कन्या पक्ष वालों के यहाँ से लगुन में वर के लिये जो वस्त्र जाते हैं, उनमें एक चार मीटर का सफेद कपड़ा होता है, जिस पर कन्या के दाँये हाथ का हांथा लगवाया जाता है जो सम्भवतः कन्या की पहचान करने का प्रतीक है। तेल की रस्म के दिन माय-मैर के कोठे के अंदर दीवाल पर घर की बुजुर्ग सुहागिन स्त्री हल्दी का थापा लागाती है, जो कुलदेवता की स्थापना का प्रतीक है। विवाह मण्डप के स्तम्भ को फूफा अथवा मानदान पुरूष गाड़ते है। उस अवसर पर सर्वप्रथम मण्डप के स्तम्भ पर हांथा लगाया जाता है। ननदोई–सलहजें एक दूसरे की पीठ पर थापे लगाते हैं। कन्या पक्ष में विदाई के पूर्व माय के कोठे में उसकी स्मृति के चिन्ह स्वरूप हांथे लगवाने की प्रथा है। इसी प्रकार जब वर–वधू के साथ अपने घर के प्रवेश द्वार पर बने मौरतों के ऊपर एवं माय–बाबू के स्थान पर हांथे लगवाये जाते हैं, जो वर का देवीस्वरूपा गृहलक्ष्मी के साथ आगमन एवं वधू का गृहस्थी में पदार्पण का प्रतीक तो है ही, ये हांथे इस बात का प्रतीक भी हैं कि लक्ष्मी का वरदहस्त उस परिवार पर बना रहेगा।

थापा (हांथे)

गुदना –

लीला गुदवाने की प्रथा बहुत पुरानी है। इसमें शरीर पर नीले रंग से खाल में किसी यंत्र द्वारा चित्रण करवाया जाता है। जो जीवन पर्यन्त बना रहता है। प्रेमीजनों के नाम भी गुदवाये जाते है। इनमें मनोरंजन के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप में अपने इष्ट मित्रों की याद बनाये रखने की भावना छिपी होती है। पौराणिक कथाओं में भी लीला गुदवाने का उल्लेख है। जबकि एक बार भगवान कृष्ण ने लीला गोदने वाले का रूप धारण किया था।

उपयोगिता की दृष्टि से भी लोक कला का प्रचलन होता है। जिसका विशेष उदाहरण बंगाल की पटुओं कुम्हारों की लोक में मिलता है। जिसका उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त 'काढ़ना', 'लिखना' , 'गोदना ' 'भरना', 'चीतना', 'बुनना' आदि नामो से भी जाना जाता है ।

विभिन्न अंगों कलाई, बांह, गला, छाती, ललाट आदि पर गोदना को महिलाओं किशोरियों द्वारा रेखांकित करवाना शुभ, मंगल कार्य तथा एक सांस्कृतिक पहचान माना जाता है इस । सौन्दर्य वृद्धि के साथ-साथ रोगनिरोधक भी मानते हैं जनजातीय समुदाय में यह लोक विश्वास है कि 'गोदना' मरणोपरांत भी साथ जाता है गोदना में गोत्र प्रतीक, फूल, सर्प, खोंऊ, आदि की आकृति भी बनाई जाती है।

गुदना

जिरोती –

जिरोती का त्यौहार आने के आठ दिन पूर्व से बहन–बेटी अपने माता पिता के घर आ जाती है । जिरोती एक चित्र है, जिसे घर की महिलाएँ जिरोती आने के पाँच–सात दिन पहले बनाना शुरू कर देती हैं। घर के मध्य भाग की दीवार को गोबर मिट्टी से पोत दिया जाता है, जिसे निमाड़ी में 'कवला पोतना' कहते हैं अगर चूने से पुती दीवार हुई तो उसे चूने से और उजाल दिया जाता है, दीवार अच्छी तरह सूख जाने पर जिरोती का चित्र उकेरा जाता है विभिन्न प्रकार के रंगों का संयोजन ही जिरोती का मूल स्वरूप निखारता है । रंग मूलतः घरों में ही सहज रूप से प्राप्त हो जाते हैं, लिपी–पुती पृष्ठ भूमि पर गेरू से लाल चौकोर रंग से एक फिट वर्गाकार रूप बनाया जाता है, चौखटा बनाया जाता है। उसके पश्चात् हल्दी को गोंद के सहारे सपाट पत्थर पर घिसकर पीला रंग कटोरी में इकट्ठा कर लिया जाता है। इसी प्रकार कोयले से काला, दही खड़ी से सफेद, नील से नीला, पेवड़ी से पीला, पेड़ों की पत्तियों के रस से हरा, सिंदूर से सिंदूरी, इस तरह जितने रंग चाहिए, अलग–अलग कटोरियों में तैयार कर लिये जाते हैं। गोंद रंग को पक्का करने के लिए मिलाया जाता है ।

जिरोती के चित्र को आकार देने में तुबर काठी का ब्रश उप्लब्ध हो जाता है जिस पर रूई लपेट कर अपनी आवश्यकता के अनुसार छोटी–बड़ी ब्रश बना ली जाती है सभी रंगों की कटोरियों के लिए अलग–अलग डंडी यानी ब्रश अपयोग में लाया जाता है ।

जिरोती का निर्माण घर की बहु–बेटियां करती हैं, वे अपने सधे हाथों से रंग भरना प्रारंभ करती हैं। गेरू से पूते लाल चौखट में चार सरी, यानी चार लकीरों वाला फ्रेंम को पीले रंग के बेलबूटों से खूब सजाया जाता है। चौखटे की सजावट के बाद चौखटे के बीचों–बीच आदि शक्ति देवी 'जिरोती' की तीन या पाँच बनायी आकृतियां बनाई जाती हैं। सारी आकृतियां खड़ी हाती हैं जिरोती के सारे चित्र गुणित 'गणित का निशान ' एवं धन '+' की खड़ी लकीर के आधार से ही बनाये जाते हैं, मनुष्य की आकृति के लिए गुणित '×' का चिन्ह उपयोग में लाया जाता है। गुणित के चिन्ह को ऊपर, नीचे से एक रेखा से बन्द करके मनुष्य धड़ नीचे की ओर दो खड़ी लकीरें खींचने से पैर बनाये जाते हैं ऊपर की ओर आयत बनाने से सिर, कान आद की अभिव्यक्ति अपने आप बन जाती है धड़ के ऊपरी सिरे से कुछ नीचे फिर ऊपर रेखाओं के अंकन से हाथ बन जाते हैं। हाथ में

एक छोटी आड़ी लकीर डालकर उस पर पाँच छोटी-छोटी खड़ी लकीरें खींचने से आँखें, मुँह, नाक बन जाते हैं। बालक आकृति के लिये चितेरे बड़ा सरल तरीका अपनाते हैं। एक खड़ी लकीर पर ऊपर और नीचे के हिस्से में दो-दो थोड़ी तिरछी रेखायें मिला देने से चलते-फिरते दौड़ते बालक बन जाते हैं।

पद्मश्री रामनारायण उपाध्याय ने अपनी पुस्तक में लिखा है - यह एक बड़े विचित्र संयोग की बात है कि इन चित्रों का स्वरूप प्रागैतिहासिक काल के चित्रों से अत्याधिक मिलता है। जिरोती का भित्ती चित्र पारिवारिक जीवन की अभिव्यक्ति है। चित्र में जो आकृतियां समाविष्ट की जाती हैं, वे संपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति हैं। जैसे चाँद, सूर्य, मांगलिक प्रतीक स्वास्तिक, झूला, पनिहारिन, बेड़ा, गाय-बछड़ा, निसरनी मुख्य द्वार पर गमला, जिसमें खिला हुआ पुष्प, बिच्छू, दही मंथती महिला का अंकन प्रतीकात्मक होता है। मध्य भाग में आदि शक्ति की तीन आकृतियां जिरोती देवी का प्रतीक मानी जाती हैं। संपूर्ण आकृति बन जाने के बाद जिरोती अमावस्या के दिन परिवार के सभी सदस्य प्रातः काल स्नान से निवृत्त होकर जिरोती पूजा अर्चना में संलग्न हो जाते हैं घर की बहू-बेटियां पूजा की थाल सजाकर पूजा करने की प्रक्रिया प्रारंभ करती हैं। पूजा प्रारंभ करने से पहले जिरोती की आँखे खोलने का प्रावधान है। निमाड़ में जिसे 'डोलाखोलणूं' कहा जाता है मुख्य आकृतियों में जहाँ आँख का स्थान होता है, वहाँ पर सफेद पर काले रंग की टिपकियां लगी दी जाती हैं और देवी की आँखें खोल दी जाती हैं, इसे 'प्राण प्रतिष्ठा' भी कहा जाता है।

आंखो को खोलते ही धूप-दीप, नैवैद्य तथा कुमकुम, हल्दी अक्षत से विधि विधान से जिरोती की पूजा की जाती है। एक-एक कर परिवार के सभी सदस्य पूजन कर जिरोती देवी के चरणों में नमन करते हैं। पूजन के पश्चात सब को प्रसाद बांट दिया जाता है। बहू बेटियाँ बड़ो के पैर छूती है और आशीर्वाद प्राप्त करती हैं। जिरोती के सबंध में मेरा मंतव्य कुछ अलग है यदि यह जिरोती जरा देवी है तो मध्य भाग की आकृति केवल एक होती हैं, जैसे कुल देवी की आकृति मांगलिक प्रसंगों पर एक ही बनाई जाती हैं। मैं समझता हूँ ये तीन आकृतियां लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती की ही हो सकती हैं क्योंकि ये तीन देवियाँ सुख समृद्धि की प्रतीक हैं और हम जिरोती के भित्ती चित्र में घर

परिवार और संपूर्ण जीवन को रेखांकित करते हैं। हम इस मनोभाव से अंकित करते है कि आदि देवियां पूरे जीवन की रक्षा करने वाली हैं।

निमाड़ में भी जिरोती त्योहार बहुत अच्छे से मनाया जाता है। इसलिये रामनारायण उपाध्याय के इस तथ्य से पूर्णतः सहमत हूँ कि निमाड़ में बनाई जाने वाले जिरोती का त्यौहार नही होता तो निमाड़ के घरों की दीवारें चित्रों के वगैर सूनी होती । जिरोती भित्ती चित्र का अंकन पूर्णतः प्रतिकात्मक हैं। इसमें जो भी प्रतीक गढ़ गए हैं वे प्राचीनम प्रतीक हैं। जिरोती की आकृतियों का साम्य प्रागौतिहासिक काल के गुहा चित्रों में मिलता हैं। अभी भी उसी तरह मनुष्याकृतियां बनाई जाती है जिस प्रकार आदिम मानव बनाता था। जिरोती चित्र की प्राचीनता का इससे सहज पता लग जाता हैं।

जिरोती

महावर –

श्रृंगार प्रसाधनों एवं सौभाग्य चिन्हों में पांवों का श्रृगांर विशिष्ट स्थान रखता हैं। महावर को आलता कहा जाता हैं । यह लाख का रस हैं, अतः लाक्षारस भी कहा जाता हैं। मांगलिक अवसरों पर पति–पत्नि की ऐड़ियों को आलता से रंगने की प्रथा हैं। शादी विवाह में दूल्हे एवं दूल्हन की एड़ियों को रंगा जाता हैं। महावर की रचना में शरीर शोभा के साथ सौभाग्य कामना का भाव पूर्णरूपेण विद्यमान रहता हैं। सौभाग्यवती स्त्रियाँ स्वंय या नाईन से महावर रचवाने का कार्य करती हैं।

बुंदेलखण्ड में जब महिलाओं के यहा बच्चा होता हैं तो उस समय बच्चे के होने की खुशी में चौक भरा जाता हैं। जिसमे नाईन माँ के पैरों में हल्दी लगाकर उन्हें महावर लगाती हैं और बच्चें के पैरों को भी महावर से रंगती हैं।

बिहारी का एक दोहा है–

‘पांव महावर दैन को नाईन बैठी आय,

फिर–फिर जान महावरी ऐड़ी मींजति जाय।’

नाईन नायिका के पांवों में महावर लगाने के लिये उसकी ऐड़ियों को साफ करती है, पर भ्रम में पड़ जाती हैं, कहीं उसने महावर लगा तो नही रखा हैं। वस्तुतः उसकी ऐड़ियां इतनी लाल है कि नाईन को उन्हें बार–बार रगड़ने पर भी महावर लगे होने का भ्रम हो जाता हैं।

महावर

करवा चौथ माता-

यह व्रत बुन्देलखण्ड में कार्तिक कृष्ण पथ चर्तुथी को रखा जाता हैं। यह सौभाग्यवती महिलाओं का एक महत्वपूर्ण व्रत है। यह व्रत सौभाग्य समृद्धि सन्तति और यश की प्राप्ति के लिये कष्ट साध्य व्रत हैं। अन्य की तो बात अलग हैं, पूरे दिन जल तक ग्रहण नही किया जाता। इस व्रत की सीमा सूर्योदय से चन्द्रोदय तक है। चर्तुथी के चन्द्रोदय के पश्चात् भित्ति पर चौथ मैया की आकृति का पूजन-अर्चन किया जाता है। मैदा के स्वेत पकवानों से पूजन-अर्चन करने के पश्चात् चन्द्रमा को अर्ध्य देकर, महिलायें कथा सुनाकर अपने-अपने अविचल सुहाग का वरदान मांगती हैं। महिलाऐं नवीन वस्त्राभूषण धारण करके सुसज्जित होकर अखण्ड सौभाग्य को प्राप्त करती हैं। इस व्रत की लोक कथा में व्रत के खंडित हो पर महिला को विधवा और व्रत के पूर्ण होने पर पुनः पति के जीवित होने का वर्णन किया गया है और कथा के अंत में कल्याण कामना करते हुए कहा जाता है -‘ जैसे चौथ मैया की कृपा से ऊँ दुखयारी को पति जीवित हो गऔ, ऊसई सवई के पतियंन की आवारदा बढ़ा दीइयौ।’

नारी के लिये सुहाग से बढ़कर और कौनसा मांगलिक कार्य हो सकता हैं? इस व्रत के मांगलिक प्रतीक चौथ माता का चित्रांकन और चंद्रमा के भित्ति पर चित्रित किया जाता हैं।

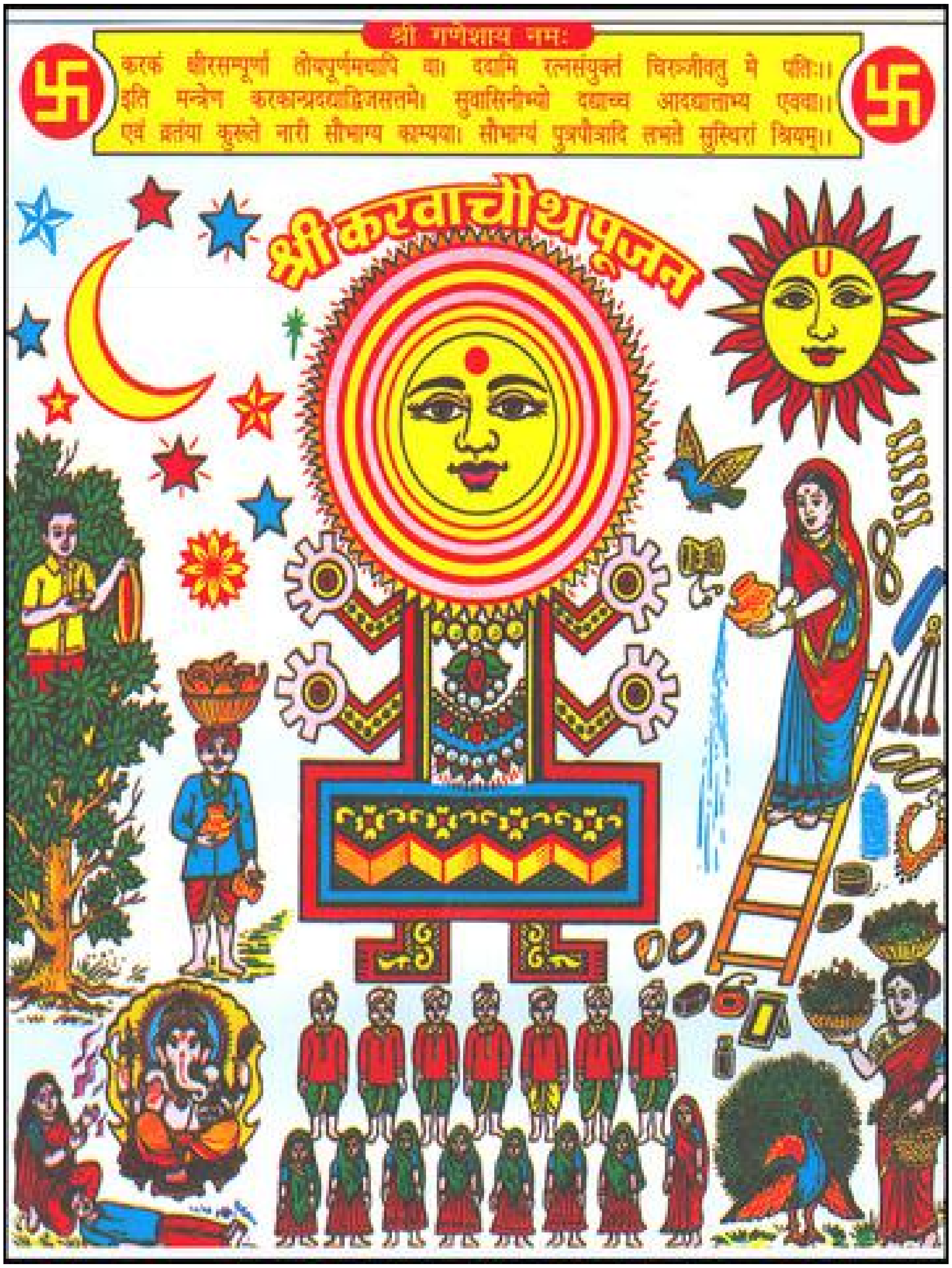
श्री गणेशाय नमः
करकं क्षीरसम्पूर्णा तोयपूर्णमथापि वा। ददामि रत्नसंयुक्तं चिरञ्जीवतु मे पतिः।।
इति मन्त्रेण करकान्प्रदद्याद्विजसत्तमे। सुवासिनीभ्यो दद्याच्च आदद्यात्ताभ्य एववा।।
एवं व्रतंया कुरूते नारी सौभाग्य काम्यया। सौभाग्यं पुत्रपौत्रादि लभते सुस्थिरां श्रियम्।।
श्री करवाचौथ पूजन

करवा चौथ माता

दूल्हा देव–

मान्यता के अनुसार दूल्हादेव का पूजन विवाहोत्सव में प्रमुख रूप से अनिवार्य है। कहते है कि यह विवाह की विघ्न बाधाओं को हरने वाले देवता है, विवाह से अंत तक इनकी मनौती मानी जाती है। जब तक लड़का–लड़की, दूल्हा–दुल्हन के भेष में रहते हैं। इनके संरक्षण में रहते हैं, हर ग्राम में दूल्हा देव का चबूतरा हैं, सूक्ष्म रूप से इन्हें वह सारी सामग्री चढ़ाई जाती हैं जो दूल्हा के पहनावे में आती है एवं विवाह के पूर्व प्रथम निमंत्रण इन्ही का किया जाता हैं। पीला, केसरिया, सफेद व लाल रंग का इनका बाना हैं। मान्यता के अनुसार ये हरदौल जू के भनेज दामाद थे एवं उनके पूजन के प्रथम पूज्य माने गये हैं। किसी–किसी ग्राम में हरदौल का एवं दूल्हा देव का चबूतरा एक ही स्थान पर आस–पास पाया जाता हैं एवं एक ही साथ पहले दूल्हा देव की ओर बाद में हरदौल जी की पूजा की जाती हैं। कहते है कि हरदौल जी को उनके बड़े भाई जुझार सिंह ने उन्ही की भाभी के हाथों जहर दिलाकर मरवा दिया क्योंकि उन्हें अपनी पत्नि एवं छोटे भाई के चरित्र पर संदेह हो गया था। छोटे भाई हरदौल ने जानते हुये जहर मिला भोजन करके भाभी की मर्यादा को पूज्य बनाया।

इन्ही की बहिन कुन्जा ने अपनी बेटी की शादी में रोते हुए भाई को याद किया और हरदौल अपनी भनेजन की शादी में आभा के रूप में प्रकट हुए एवं दूल्हा के हठ करने पर उन्होंने दर्शन दिये।

अपने भनेज दमाद को बारह गांव भी दिये, जहां आज भी हरदौल की पूजा नही होती। कहते है फकीरी संतों और महापुरषों के गांव नही होते पर उनके नाम पर गांव बनाये जाते हैं। बुंदेलखण्ड क्षेत्र में हरदौल के चबूतरें हर ग्राम में मिलेगें। देवर भाभी के पवित्र प्रेम की गाथा एवं भाई–बहिन का अमर प्यार आज भी यहां स्मरण किया जाता हैं और आज भी जो गांव उन्होंने अपने भनेज दमाद को दिये, वहां न तो हरदौल के चबूतरें मिलेगें और न वहां इनका पूजन होता हैं जैसे– राव, रायली, पठा, चंदावली, डेरा सकेरा, हरा परेरा इत्यादि ग्रामों में इनका पूजन उनके दमाद को दिया जाता हैं। हरदौल की कथा आज भी उतनी ही ताजी और स्मणीय है जितनी उनके समय में थी और सदा रहेगीं।

दूल्हा देव

रंगोली-

रंगोली भी अपने सौंदर्य बोध और कलात्मक अभिरूचि को प्रकट करने की एक कला हैं चूकिं इसमें आधुनिक रंगों का प्रयोग किया जाता हैं और इसकी परंपरा लोक समाज की अपेक्षा शिक्षित समाज में अधिक पाई जाती हैं। अतः लोक चित्रकला से यह भिन्न कला है। लेकिन समाज में रंगोली की तरह बिन्दु, रेखा, त्रिकोण व विभिन्न कोणों के माध्यम से लोक चित्र का अंकन किया जाता हैं। ये लोक चित्र जमीन पर आटे के घोल या चूने के घोल से तैयार किये जाते हैं। सांतिया (स्वस्तिक), कमल पुष्प, पत्तियाँ, वृक्ष, त्रिशूल, सूर्य, चन्द्रमा, पद चिन्ह, सर्प, बिच्छू, शंख, दीप का अंकन प्रमुखता से होता हैं।

स्वस्तिक या सांतिया हिन्दु संस्कृति में मंगल का सूचक हैं। चार भुजाएं चारों दिशाओं एवं उसके देवताओं, अग्नि, वरूण, इन्द्र और सोम, चार पुरूषार्थ- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रतीक हैं। ये चार वेदों के पर्याय है। जिसमें लोक मंगल की भावनाऐं शामिल हैं। कमल-पुष्प सौंदर्य का प्रतीक है। वृक्ष, पत्तियां, पशु-पक्षियों का चित्रांकन, प्रकृति प्रेम के लिये प्रेरित करता है। त्रिशूल दुशप्रवित्तियों के संहार का सूचक हैं तो सूरज और चंद्रमा प्रकाश के प्रतीक है। पद चिन्ह पवित्रता का, शंख पवित्र उद्‌घोषक और दीप अंधकार से प्रकाश की ओर चलने का संकेत करता हैं। लोक चित्रों मे। सर्वत्र की भावना व लोक जीवन की उदारता का परिचायक हैं।

रंगोली

लंगूर वीर-

हनुमान जी को जनपदीय संस्कृति में 'लंगूर वीर' की संज्ञा दी जाती हैं । यही वजह है कि यहा लगभग सभी गांवों में हनुमानजी का मंदिर मिल जाता हैं। राम के अनन्य सेवक होने के कारण जनपद में लोग हनुमानजी को लोग सदैव रक्षक के रूप में पूजते हैं। इसी का लोक चित्र के रूप में लंगूर वीर बनाया जाता हैं। विशेष रूप से क्वांर और चैत्र नवरात्रि पर्व के समय वैगा वंदन का घी या तेल में घोलकर अंगुलीयों के सहारे बंदर की लोकाकृति बनायी जाती हैं। कोई चित्रकार गांव में हो तो हनुमान जी का चित्र बनवाया जाता हैं पर वैगा के हाथों बने लंगूर वीर को बड़ा पवित्र माना जाता हैं। इन्हें आस्था के साथ पूजित किया जाता हैं और यह हर प्रकार से रक्षक माने जाते है। जब घर या गांव में माता शीतला या महामाया में जंवारा का अनुष्ठान किया जाता हैं तब इसमें कई तरह की बाधाऐं उत्पन्न होने की आशंका रहती हैं। इसलिये पण्डा अपने हाथों से हनुमान जी का प्रतीक पुतलानुमा चित्र बना देता हैं। बाजू में त्रिशूल की रेखाकृति बना दी जाती है, जो दुर्गा माता के विशेष शस्त्र के रूप में रक्षक होता है। दरवाजे पर बना देने से घर वाले आश्वस्त हो जाते हैं कि हमारे अनुष्ठान मे किसी तरह की बाधा नही आयेगीं। बजरंगबली सदा सहायता करेंगें। बैगाओं द्वारा किये गये चित्रांकन एकदम सरल व मौलिक होते हैं, जो इसके जनपदीय होने को प्रमाणित करते हैं। इनकों देखते ही मन में श्रृद्धा और सुरक्षा का भाव पैदा हो जाता हैं। पण्डा लोग इसे ज्योति वाले कक्ष के दरवाजे के दोंनों ओर खप्पर, ज्योति पात्र, मुख्य प्रवेश द्वार पर बनाकर आश्वस्य हो जाते हैं। साथ ही इस मांगलिक प्रतीक को रास्ते चलते लोग भी देखकर जान जाते है कि इस घर में जंवारा का अनुष्ठान किया गया हैं। इस तरह लंगूर वीर मांगलिक प्रतीक के रूप में चित्रित किया जाता हैं।

लंगूर वीर

आठें कन्हैया-

प्रदेश के मांगलिक प्रतीकों में भित्ती चित्रों की लम्बी श्रृखंला हैं। ऐसे चित्रों को आनुष्ठानिक चित्रों के क्रम में रखा जाता हैं। जोकि मांगलिक होने के साथ ही पौणारिक कथा प्रसंगों को अभिव्यक्त करते हैं। यहां भादौ मास में कृष्णा जन्माष्टिमी के समय 'आठें कन्हैया' नाम से चित्र बनाते हैं। ये चित्र एकदम मौलिक होने के साथ ही कलात्मकता से भरपूर होते है। द्वापर युग की घटना में जब राक्षस राजवंश ने अपने ही भांजों को मारने का काम प्रारंभ किया, तब उसने अपनी मृत्यु के भय से बहन देवकी को कारावास में डाल दिया था। एक-एक कर उसकी सात संतानों को मौत के घाट उतार दिया था। तब देवकी इन संतानों की याद में एक एक पुतले का चित्रांकन कारावास की दीवारों पर करती गई। उसी घटनाक्रम को याद करके प्रदेश में कृष्णा जन्माष्टिमी के दिन 'आठें कन्हैया' के नाम से चित्रांकन किया जाता हैं। जन्माष्टिमी की संध्या के समय कुंवारी कन्याएं, माता या बहिन रसोईघर या किसी कमरे की दीवार पर प्राकृतिक रंग तोरई, सेम, पोई भाजी की पत्तियां, आलता, माहूर,स्याही, टेहर्रा, सूवा पांखी रंग का उपयोग कर आठ पुतलों का चित्र लोक शैली में बनाती हैं। रात्रि तक इस चित्र को बना लेते हैं। इस दिन लोग उपवास रखते हैं। इस चित्र के सामने भगवान कृष्ण का फोटो रखकर पूजा अनुष्ठान पूर्ण करते हैं। तभी फलाहार ग्रहण करते हैं। इस तरह यह प्रदेश का आनुष्ठानिक चित्र होने के साथ ही मांगलिकता का प्रतीक हैं। दैनिक जीवन की व्यस्तता के बाद भी इस लोक चित्र शैली का जीवंत रहना इसके मांगलिक होने को स्पष्ट करता हैं।

लोगों की कामना हमेशा मंगलमय जीवन की होती हैं। लोक संस्कृति में प्रचिलित मांगलिक प्रतीकों का लोगों ने हर स्थिति में उपयोग किया हैं। इसकी परम्परा को भावी पीड़ी को सौंपने का कार्य प्रभावी ढंग से हो रहा है। इसे प्रयास करके बढ़ाना समय की मांग है। जन-जन में ऐसे प्रतीकों के प्रति आस्था तो बनी हुई हैं, इसे व्यापक रूप प्रदान करने की भी जरूरत हैं।

आठें कन्हैया

सूर्य एवं चंद्रमा-

सूर्य एवं चन्द्र की उपासना विश्व में सर्वत्र होती हैं। बुंदेलखण्ड में भी सूर्य एवं चन्द्र की उपासना का विशिष्ट महत्व है। सूर्य को शक्ति का स्त्रोत माना गया हैं। सूर्य जीवन रक्षा का प्रतीक हैं। सूर्य- ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप हैं। समस्त लोकों का अधिपति सूर्य हैं। सूर्योपासना से ही ब्रह्मा को ब्रह्मपद, विष्णु को विष्णुपद तथा शिव को शिवत्व प्राप्त हैं। इन्द्र को इन्द्रत्व की प्राप्ति भी सूर्य की उपासना से प्राप्त हुई है। बुंदेलखण्ड में 'करवा चौथ', 'भाई दोज', नकुल नवमीं', 'हलषष्ठी' देवउठावनी इकादशी आदि के अवसर पर अंकित चित्रों में सूर्य और चंद्र के चित्र अंकित किये जाते हैं। लोकगीतों में भी प्रतीकात्मक रूप में सूर्य और चंद्र का उल्लेख होता हैं । चन्द्रमा शीतलता का प्रतीक हैं। परमपिता परमात्मा के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। इसलिए ' चन्द्रमा मनसो जातः' कहा गया हैं। सूर्य और चंद्र जीवन की निरंतरता व साश्वस्तता के प्रतीक हैं। इसी प्रतीकात्मता के साथ लोकचित्र में इनका चित्रांकन होता हैं। सूर्य चन्द्र से भ्रातृत्व भाव स्थापित करने की परंपरा भी लोक में विद्यमान हैं। चंद्रमा से मामा का संबंध स्थापना भी लोक चलन में हैं। एक नौरता संबंधी लोकगीत में सूर्य और चंद्र को शिवत्व का प्रतीक मानते हुए उनके परोपकारी रूप का बखान किया गया हैं।

लीले से घुड़ता कुँदाउत जैहें,
लाल छड़ी चमकाउत जैहें,
पाँवड़ियों चटकाउत जैहें,
सिर की पगड़ी समारत जैहें,
उखटे बाग लगाउत जैहें,
अंध कुअँल उघराउत जैहें,
फूटे ताल बधाउत जैहें,
नंगी डुकरियाँ पहिराउत जैहें,
बेई मोरे भइया
चन्दामल भइया सूरजमल भइया।

सूर्य एवं चंद्रमा

fHkfRr ykdfp= o vU; fp=

vuØekd

- ❖डंडा कट्टा :- आड़ादि बोंगा(विवाह)
- ❖सोहराई या गोटेर वोंगा (गोहल देवता)
- ❖गोंड लोकचित्रकला
- ❖कोहबर, बिंदिया, चित्रकारी
- ❖हल
- ❖होर्या
- ❖पिथोरा चित्रकला
- ❖दशहरा पर्व के चित्र
- ❖आसमाई
- ❖निषाद् जाति का भित्ति चित्र
- ❖देवउठनी ग्यारस ग्यारस के चित्र
- ❖सावनाती

भित्ति लोकचित्र व अन्य चित्र

आदिमानव ने जब अपने शरीर की पुष्टता के लिए भोजन ने की व्यवस्था कर ली, तब उसने अपने मस्तिष्क की रिक्तता को भरने के लिए अपनी अंगुलियों के माध्यम से उपक्रम किया। सर्वप्रथम उसने रेत व मिट्‌टी (धूल) पर अपनी अंगुलियों को फिरा कर कुछ आकृतियों का निर्माण किया। पर ये आकृतियाँ मिट जाती थीं। तब उसने गुफाओं की दीवारों पर खड़िया या गेरू से कुछ रेखाएँ खींची, कुछ आकृतियाँ बनायीं । आदिमानव तो गुफाओं में रहता था। यह सत्य आज भी हमारे सामने शैलचित्रों के रूप में विद्यामान है, जहाँ आदिम अवस्था में रह रहे मानव का कलाप्रेम उसको पशु-पक्षी के चित्रों व उनके शिकार के चित्रों के रूप में चित्रित है। यही चित्रकला का प्रारंभ है। चित्रकला का यही स्वरूप अपने आदिम रूप में आज लोकजीवन की कलाप्रियता का साक्षी है। बुंदेलखंड में लोकचित्रों की बड़ी सुदीर्घ परम्परा है, जो हमारे तीज-त्योहारों व मांगलिक अवसरों पर चित्रित होती है। ये लोकचित्र जिनमें लोकमंगल की भावनाएँ समाहित रहती हैं, इन्हें भित्तिचित्र, हांथा और चौक के नाम से वर्गीकृत किया जा सकता है।

भित्तिचित्र :-

भित्तिचित्र बड़े सहज और सरल होते हैं, किन्तु प्रतीक रूप में ये बड़े अर्थवान होते हैं। भित्तिचित्रों के निर्माण के लिये न महंगे रंगों की जरूरत पड़ती है और न ही तूलिका की । लोक की यही खासियत है कि वह स्थानीय सुलभ साधनों से अपनी कला का प्रांण बनाता है। भित्तिचित्र लोक की अभिव्यक्ति है, इसलिये लोक की संकल्पना, उसकी आस्था और विश्वास इनमें मुखरित होते हैं।

भित्तिचित्र कला प्राचीन है। प्रागैतिहासिक युग के ऐतिहासिक रिकार्ड में पहले मिट्टी के बर्तन बनाये जाते थ, लेकिन कुछ समय बाद लोगों ने मिट्टी का प्रयोग दीवारों पर चित्र बनाने के लिये करने लगे ।भित्तिचित्र कला में दीवारों पर ज्यामितिक आकार, कलापूर्ण अभिप्राय, पारंपरिक आकल्पन, सहज बनावट और अनुकरमूलक सरल आकृतियों में निहित स्वच्छंद आकल्पन, उन्मुक्त, आवेग और रैखिक ऊर्जा, अनुठी ताजगी और चाक्षुष सौंदर्य सृष्टि करती है।

आमतौर पर इसे दीवारों पर बनाई गई पेंटिंग के रूप में समझा जाता है। दीवारों पर पेंटिंग बनाने से हट कर सोचने व क्रियांवित करने के ट्रेंड ने इसे बहुआयामी बना दिया है। अब टाइल्स, टेराकोटा, सीमेंट, बालू, ग्लास, प्लास्टिक, लोहे और स्टील आदि माध्यमों से स्थाई म्यूरल बनाये जाते है। भित्तिचित्र को मिट्टी व गाय का गोबर का घोल बनाकर दीवारों पर लिपाई की जाती है इसे घर की तीन खास जगहों पर ही बनाने की पंरपरा है जैसेः- भगवान व विवाहितों के कमरे में और शादी या किसी खास उत्सव पर घर की बाहरी दीवारों पर मधुवनी पेंटिंग में जिन देवी-देवताओं को दिखाया जाता है। वे हे मां दुर्गा, काली, सीता-राम, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, गौरी-गणेश और विष्णु के दस अवतार इन तस्वीरों के अलावा कई प्राकृतिक और रम्य नजारों की भी पेंटिंग बनाई जाती है। जानवरों, चिड़िया, फूल-पत्ती, को स्वस्ति की निशानी के साथ सजाया संवारा जाता है।

चटख रंगों का खूब इस्तेमाल किया जाता है। जैसः गहरा लाल रंग, हरा, नीला और काला। कुछ हल्के रंगों से भी चित्र में निखार लाया जाता है, जैसे : पीला, गुलाबी और नीला रंग। यह जानकर हैरानी होगी कि इन रंगों को घरेलू चीजों से ही बनाया जाता है। जैसे हल्दी केले के पत्ते, लाल रंग के लिए पीपल की छाल का प्रयोग किया जाता है और दूध का। भित्तीचित्रों के आलावा अल्पना भी काफी चलन में है इसे बैठक या फिर दरवाजे के बाहर बनाया जाता है। पहले इसे

इसलिए बनाया जाता था ताकि खेतों में फसल की पैदावार अच्छी हो। लेकिन आजकल इसे घर के शुभ कामों में बनाया जाता है।

प्रस्तुत की गई पहली, दूसरी, तीसरी व चौथी रिपोर्ट में दिए गए चित्र व उनका वर्णन कुछ ग्रामीणांचलों में जाकर वहां की लोकचित्रकाओं की जानकारी वहां के व्यक्तियों से प्राप्त की गई है एवं कुछ सामग्री लोककलाओं पर आधारित पुस्तकों एवं इन कलाओं के जानकारों द्वारा एकत्रित की गई है और सामग्री को एकत्रित करने के लिए इंटरनेट से भी लिया गया है। परंतु कहीं-कहीं इन चित्रों का प्रयोग बंद हो चुका है, लेकिन इनकी जानकारी वहां पर निवास करने वाले व्यक्ति रखते है, एवं ग्रामीण क्षेत्रों में इन चित्रों का अभाव होने से इन चित्रों का सिर्फ रेखांकन ही प्राप्त किया जा सका है।

प्रस्तुत रिपोर्टो में इंटरनेट का प्रयोग इसलिये किया गया है क्योंकि चित्रों कि पूर्ण जानकारी आसानी से प्राप्त की जा सकी है।

मैं आशा करता हूँ कि मेरे द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट एवं मेरी अथक मेहनत के प्रयास से समस्त प्रस्तुत की गई रिपोर्ट एवं इनकी जानकारी पूर्णतः भारत सरकार संस्कृति मंत्रालय की अखंड लोक कलाओं के संचय में महत्वपूर्ण जानकारी रखेगीं।

धन्यवाद

डंडा कट्टा :- आड़ादि बोंगा(विवाह)

विवाह के निमित्त वर - कन्या के चयन हेतु जाते समय निम्नांकित शकुन का विशेष महत्व है कोमा जो निर्विघ्न विवाह सम्पन्न होने का मांगलिक संकेत या प्रतीक माना जाता है।

गाय के बछड़े को दूध पिलाना, पानी से भरा घड़ा लेकर स्त्री का दर्शन, जंगली जानवर द्वारा रास्ते से किनारे-किनारे चला जाना (रास्ता नही काटना) पक्षी का मिलन एवं कलरव इत्यादि। विवाह के मंडप को साल वृक्ष की डाल से बनाकर मंडप में वेदी के बली में खूंटा गाड़कर उसमें महुआ, बांस, भेलवा और ओतरों की लताओं को बांधा जाता है, जो दीर्घ जीवन संमृद्धि और सुचिता का प्रतीक है मंडप में वेदी के पास एक गोल फूलदार अल्पना सफेद, लाल और काले रंगों से बनाई जाती है, जिसे 'डंडा कट्टा ' कहतें हैं। यह देवताओं को आमंत्रित करने और दुष्ट प्रतों को दूर रखने में सहायक एक प्रमुख मांगलिक प्रतीक माना जाता है। यह लोकचित्र अलग-अलग क्षेत्रों व जनजाति में अलग-अलग नाम से जाना जाता है। इसे उरांव जनजाति में डंडा कट्टा कहते है। यह मुख्य रूप से यहां की जनजाति का मांगलिक प्रतीक है।

संताल जनजाति में इसे 'खौद्र' कहा जाता है। इस अल्पना के चोकोर भाग के दोनों ओर वर और वधू को बैठाया जाता है और बीच में जल से भरा कलश रखा जाता है। विरहोर आदिम जनजाति में विवाह के अवसर पर चांवल के आटे का चोकोर अल्पना या चौक पूरा जाता है, जिसके चारो भागों में तीन-तीन लकीरें और मध्य भाग में चारों काणों को तीन-तीन लकीरों से जोड़ दिया जाता है इसे लाल और काले रंग से रंगा जाता है। दाम्पत्य जीवन को सुखी रखने और वंश वृद्धि (संतानोत्पत्ति) में सहायक माना जाता है।

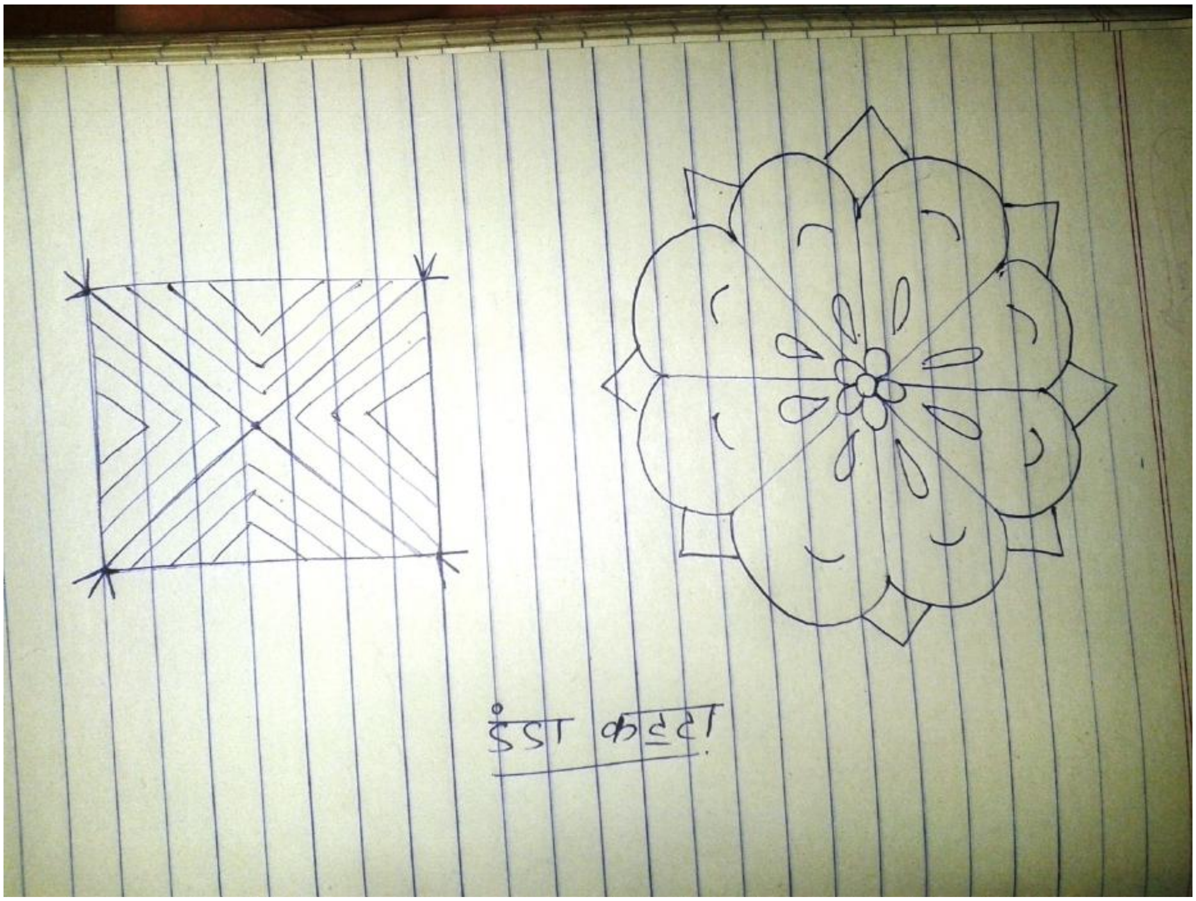

डंडा कट्टा :– आड़ादि बोंगा(विवाह)

सोहराई या गोटेर वोंगा (गोहल देवता):-

यह पर्व कृषि कार्य में अपना बहुमूल्य योगदान देने वाले मवेशिओं के सम्मान का पर्व है, वे 'गुंडीअरी' (गाय) को लक्ष्मी का प्रतीक मानते हैं यह पर्व दीपावली और गोधन पर्व के क्रम पर्व क्रम में मनाया जाता है इस पर्व में मवेशियों के आवास में (गोहल) को लीप-पोतकर साफ किया जाता है। महिलायें द्वारा द्वार पर पोतकर साफ किया जाता है। महिलाएँ द्वार पर चांवल के आटे से सुंदर अल्पना बनाती हैं, जो लक्ष्मी जी के स्वागत का मांगलिक प्रतीक माना जाता है। गोटेर वोंगा (गोहल देवता) का पाहन या दीउरी (पुजारी) द्वारा मंत्र पाठ कर आवाहर किया जाता है और दीप प्रज्वलित कर उनका स्वागत किया जाता है। सभी गाय-बैलों को नहलाकर, उनको विभिन्न रंगों और फूलों से सजाकर, उनकी पूजा कर रहे घास के साथ पका हुआ खाना (दाल, चांवल आदि) भी उन्हें खिलाया जाता है। गोरखिया या चरवाहा को ही सम्मानित किया जाता है इस अवसर पर संताल द्वारा अपने घर की दीवार पर घोड़ा, फूल, पत्ता, सूर्य, चंद्रमा, मोर, पिरामिड आदि के चित्र मांगलिक प्रतीक के रूप में विभिन्न रंगों से बनवाते जाते हैं।

सोहराई या गोटेर वोंगा (गोहल देवता)

दशहरा पर्व के चित्रः-

दशहरे के धरती चित्र को घर की बहन-बेटियाँ बड़े मनोयोग से बनाती हैं। इसे बनाने में किसी प्रकार का कोई ब्रुश अथवा तूअर काठी की काड़ी का उपयोग नहीं लिया जाता। केवल रूई के फोये का उपयोग किया जाता है। कनिष्ठका और अनामिका के बीच रूई को दबाकर सारी आकृतियाँ बनाई जाती हैं। सबसे पहले चारसार की चौकोर लकीरें खींची जाती हैं। दहीखड़ी की कटोरी में अंगुलियों को डुबो-डुबोकर दशहरा बनाया जाता है। मध्य भाग में दशहरे की मुख्य आकृति बनाई जाती है, फिर उसके आस-पास तुलसी क्यारा, बंदर, बैलगाड़ी आदि मोटी-मोटी लकीरों के माध्यम से बनाये जाते है। पूर्ण चित्र बन जाने के बाद इसके पूजन का विधान है। पूजन सामग्री एक थाली में संजोकर रख ली जाती है। थाली में कुंकुम, अक्षत, हल्दी, पुष्प, दीपक, अगरबत्ती, गिलकी के छोटे-छोटे टुकड़े गुड़ मिलाकर एक कटोरी में अलग रख दिये जाते है। दशहरे के पूजन की पूर्ण तैयारी हो जाने के बाद जब दशहरा जीते जाने का समय होता है, तब घर के पुरूष वर्ग दशहरे का पूजन करते हैं। दशहरे के पूजन के पश्चात् बहनें अपने भाइयों, पिता, दादा आदि सभी पुरूष वर्ग सभी के मांथे पर तिलक लगा कर उनकी आरती उतारती है और उन्हें गुड़ गिलकी और एक पान का बीड़ा खिलाकर उन्हें दशहरा जीतने के लिए करती हैं।

दशहरा पर्व के चित्र

हलः–

'हल' का अंकन आज लुप्त होता दिख रहा है। ग्रामीण अंचल में मांगलिक अवसरों पर भित्तियों पर उस प्रतीक का अंकन देखा जाता है। यह प्रतीक कृषि (फसल) की प्राकृतिक आपदा से बचाने के लिये किया जाता रहा है। यह प्रतीक बलदाऊ जी के शस्त्र के रूप में भी माना जाता है। विवाह के अवसर पर द्वार के दोनों ओर हल प्रतीकात्मक अंकन करने का चलन भी रहा है। अब इसका अंकन कम होने लगा है। यह हल कृषि की रक्षा और अच्छी फसलों के उपजाने का मांगलिक प्रतीक है।

हल

कोहबर, बिंदिया, चित्रकारी :-

कोहबर दो शब्दों कोह+बर से बना है। कोह अर्थात् क्रोध या रूठना, बर अर्थात् दूल्हा। कोहबर का यहाँ शाब्दिक अर्थ में प्रयोग नहीं होता। अब तो कोहबर में दूल्हा-दुल्हन का एक साथ मिलन होता है। शादी के बाद लड़की वाले घर में विदाई के बाद (लड़के वाले घर में) बने कोहबर में परिणीत जोड़े बिठाये जाते हैं। कोहबर वाला घर और उनकी दीवारें गेरू से बनाये गये चित्रों से सुसज्जित रहती है। वस्तुतः कोहवर शुभ सुचिता का कक्ष माना जाता है। पहलीवार पति के घर आने पर वरवधु का गठजोड़ कर यहां बिठाया जाता है

दीवारों पर वेल-वूटे, तरू-लता, फूल पत्ते, चंद्र-सूर्य एवं विविध देवी देवताओं के चित्र उकेरे जाते हैं। यह कार्य विशेषकर सौभाग्यवती स्त्रीयाँ करती हैं। दरवाजे के दोनों तरफ भी चित्र बनाये जाते हैं।

लालाट पर बिंदी या बिंदिया (टिकुली) लगाना सुहाग-सौख्य का परिचायक माना जाता है। बिंदिया भी विविध आकार-प्रकार की होती हैं। और देखने में सुंदर लगती है। इस संदर्भ में एक गीत भी है-

तोहरे मथवा का टिकुलिया चमकदार बाय

मारत जिया हमार बाय

बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा है -

कहत सबै बेंदी दिये आंक दस गुनो होत।

तिय लिलार बेंदी दिये अगणित बढ़त उदोत।

एक बिंदी मात्र लगाने से अंक की कीमत दस गुना बढ़ जाती पर वही बिंदी जब सौभाग्यवती स्त्री के लिलाट पर लगती है तो उसके श्री शोभा कई गुना बढ़ जाती है।

कोहबर, बिंदिया, चित्रकारी

आसमाई :-

पान के पत्ते पर हल्दी- चंदन से चार पुतलियां बनाई जाती है। ये भूख, प्यास, नींद, तथा आस की प्रतीक देवियां हैं।

मांगलिक अवसरों, तीज-त्योहारों पर लोक कलाओं का यह दर्शन हमारे श्रद्धा, विश्वास को मूर्त रूप प्रदान करता है। लोकचित्र में प्रतीक धार्मिक चेतना के अभिन्न अंग हैं। अंक प्रतीक, चक्र प्रतीक, मुद्रा प्रतीक तथा पूजन प्रतीकों का प्रचलन है। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे धार्मिक परंपरा में प्रतीाकों की केंद्रीय भूमिका है।

आसमाई

निषाद् जाति का भित्ति चित्रः-

निषाद् जाति के लोगों को स्थानीय भाषा में केवट कहा जाता है। ये कृषि के साथ-साथ मछली मारने का कार्य करते हैं। केवट जाती का संबंध श्रीरामचंद्र से है श्री रामचंद्र जी को केवट ने ही गंगा नदी से नाव में चढ़कर पार किया था। इस जाति के लोग इसे अपना गौरव मानते हैं। इसी कला से संबंधित भित्तिचित्र इनके घरों में मिलते हैं। ये चित्र सुंदर लगते हैं और लोकचित्र हैं। इन चित्रों को चितेरा लोग बनाते हैं। चितेरा निषादों के राव-भाट होते हैं। जो उस परिवार का यशोगान करते हैं।

चितेरों द्वारा निषादों के घर निर्मित चित्रों में राम, लक्ष्मण व सीता को केवट द्वारा नाव में बैठाकर गंगा पार करना, मछली मारते जाल लिये हुए केवट व मछली के साथ पेलना के चित्र प्रमुख हैं। हालांकि ये भित्तिचित्र जाति आधारित या व्यवसाय आधारित है। किन्तु ये भित्तिचित्र के आकर्षक नमुने हैं यहां भी राव-भाट द्वारा परिवार की मंगल कामना दिखाई पढ़ती है।

निषाद् जाति का भित्ति चित्र

देवउठनी ग्यारस ग्यारस के चित्र :-

देवउठनी ग्यारस के चित्र तीज त्यौंहारों व व्रत उपवासों के अवसर पर ये लोकचित्र नारी के कोमल हाथों से जमीन पर उतरकर यहां की सभ्यता और संस्कृति को जीवन्त करते हैं। देवउठनी (प्रबोधनी एकादशी) के दिन इस क्षेत्र का घर आंगन लोकचित्रों से सजसंवर जाता है। तुलसी विवाह के इस लोक पर्व पर महिलायें पद चिन्ह गाय के खुर आदि का चित्रण करती हैं यादव जाति की महिलाएं अपनी संस्कृति के अनुरूप तुलसी चौरा के समीप 'खोड़हर' का अंकन कर उसमें फांदी बनाकर लाठी चित्र करती हैं ये लोकचित्र चरवाहा संस्कृति से संबंधित होते हैं बिन्दुओं व रेखाओं के माध्यम से लोकचित्र गढ़े जाते हैं जिनमें लोक सौन्दर्य आभा झलकती है।

देवउठनी ग्यारस ग्यारस के चित्र

सावनाती :-

बुंदेलखंड में इन चित्रों का प्रयोग कहीं –कहीं पर होता है। परंतु छत्तीसगढ़ में इसका चित्रांकन किया जाता है। यह सावन मास के प्रथम दिन घी, गोबर का उपयोग कर 'सावनाती' बनायी जाती है। इसे महिलायें घर के प्रवेश के दोंनों ओर से लेकर घर के चारों ओर दोहरी रेखाएँ खींच कर बनाती हैं। गोबर से रेखा खींचते समय पाँचों अँगुलियों का उपयोग किया जाता है। चूँकि सावन में घटाटोप वर्षा होने लगती है। तब पेड़–पौधों सहित आसपास के घास–फूस वाले वातावरण में रोगाणु फैला चुके होते है। इसके प्रकोप से मानव व पशु धन दोनों को खतरा बना रहता है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में पशुपालन किया जाता है। अतः इनकी सुरक्षा की दृष्टि से गोबर की रेखाएँ खींचकर व बंदर, मनुष्य, शेर के पुतले का रेखाचित्र बनाकर एक तरह का टोटका पूर्ण करते है। इसके पीछे मान्यता यह है कि जब कोई रोगाणु या बाहरी तत्व घर में प्रवेश करता है, तब यही पुतले उनसे संवाद करते हैं। और उन्हें बाहर खदेड़ देते हैं, उन्हें भीतर प्रवेश नहीं करने देते। यह लोकमांग्लय व लोकावस्था का प्रतीक है। रेखाकृति बेहद मौलिक होती है। पाषणकाल के गुफाचित्रों की भाँति आज भी उसी मूल स्वरूप में रेखांकन करना अपनी मौलिकता को प्रकट करता है। आर्यो में स्वस्तिक को लिया होगा और अपने विभिन्न संस्कारों में शामिल किया होगा, उसके अनुरूप लोकजीवन में भी स्वस्तिक जैसे विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतीक का शामिल होना अपने आप में अनोखा है। यही कारण है कि इसे प्रादेशिक संस्कारों में भी यथावस्था शामिल किया गया है। बुजुर्ग बताते हैं कि प्रारंभ में इस चिन्ह की बनावट केवल धन के चिन्हों की तरह थी। पर आगे चलकर और विस्तार किया गया। इसी विस्तार के साथ इस प्रतीक के संदर्भो व सांस्कृतिक मूल्यों पर काफी व्यापकता के रूप में देखा जा रहा है। प्रदेश में स्वस्तिक को सार्वदेशिकता के साथ स्वीकार किया जा रहा है।

सावनाती

पिथोरा चित्रकलाः-

पिथोरा चित्रकला एक प्रकार की चित्रकला है। मध्य प्रदेश के पिथोरा क्षेत्र को इस कला का उद्‌गम स्थल कहा जाता है। इस कला के विकास में भील जनजाति के लोगों का उल्लेखनीय है। इस कला में पारंपरिक रंगों का प्रयोग किया जाता था। प्रायः घरों की दीवारों पर यह चित्रकारी की जाती थी परंतु अद्यतन समय में यह कागजों, केन्वास, कपड़ों आदि पर की जाने लगी है। यह चित्रकला राठवा, भील व नायक जनजाति के लोगों द्वारा दीवारों पर बनाई जाती है।

इसके अतिरिक्त यह कला बड़ोदा जिले के तेजगढ़ व छोटा नागपुर ताल्लुक के आसपास भी पिथोरा चित्रकला की जाती है। यह घरों की तीन भीतरी दीवारों में काफी संख्या में वहां रहने वाले जनजातीय लोगों के घरों में देखी जा सकती हैं। इस चित्रकला का जनजातीय लोगों के जीवन में विशेष महत्व है तथा उनका यह मानना है कि इस चित्रकला को घरों की दीवारों पर चित्रित करने से घर में शांति , खुशहाली व सौहार्द का विकास होता है।

पिथोरा चित्रकला का चित्रण भील, नायक व राठवा जाति के लोग ही सबसे अधिक करते है तथा अत्यंत ही साधारण स्तर के किन्तु धार्मिक लोग होते है। इनके लिए पिथोरा बाबा अति विशिष्ट व पूज्यनीय होते है। इस चित्रकला के चित्रण में ये लोग बहुत धन लगाते है तथा जो अपने घर में अधिकाधिक पिथोरा चित्र रखते हैं वे समाज में अति सम्मानिय होते हैं। चित्र बनाने वाले को लखाड़ा कहा जाता है तथा जो इन चित्रकलाओं का खाता रखते हैं उन्हें झोखरा कहा जाता है। सर्वोच्च पद पर आसीन जो पुजारी धार्मिक अनुष्ठान करवाता है उसे बडवा या अध्यक्ष पुजारी कहते है। सामान्यतः लखाड़ा किसान होते हैं। इस चित्रकला का चित्रण केवल पूरूष ही कर सकते हैं। खातों की देखरेख के अतिरिक्त लखाड़ा

सामान्य चित्रण जैसे रंग भरने का कार्य ही इन चित्रकारों में शामिल होकर कर सकते हैं। वरिष्ठ कलाकारों के मार्गदर्शन में लखाड़ा अच्छे चित्रकार बन जाते हैं। महिलाओं के लिये पिथोरा चित्रण निषेध है।

पिथोरा चित्रकला धार्मिक अनुष्ठानों से अधिक प्रभावित रहती है। इस जनजाति के धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन ईश्वर को धन्यवाद स्वरूप् या किसी की इच्छापूर्ति आदि प्रदान करने हेतु किये जाते हैं। इस प्रक्रिया में बडवा या शीर्ष पुजारी को ही बुलाया जाता है जो उनकी समस्याओं का निराकरण इन अनुष्ठानों द्वारा करवाते हैं। यह समस्याएं चाहे किसी पशु–गाय, घोड़ा, हिरण, बैल, हाथी आदि की अप्राकृतिक मृत्यु अथवा घर के बच्चों की बीमारी से सम्बन्धित हो सकती हैं जिसका समाधान बडवा द्वारा दे दिया जाता है व पूजा पाठ व पिथोरा चित्रकला बनाने का परामर्श स्वरूप उन्हें बडवा द्वारा दे दिया जाता हैं। पिथोरा चित्रकला सदैव घर के प्रवेश या ओसरी जो कि प्रथम कक्ष के सामने की दीवार या उसकी भीतरी दीवार पर की जाती है। इन दीवारों को विभिन्न आकृतियों द्वारा पूरी तरह चित्रित कर दिया जाता है।

प्रक्रिया :– रंग बनाने के लिए रंगीन पाउडर को दूध व महुआ (एक प्रकार की शराब) का प्रयोग किया जाता है जो कि महुआ के दिव्य वृक्ष से तैयार की जाती है तथा फूलों द्वारा किण्वित करके यह मदिरा बनाई जाती है व इसके बीजों द्वारा खाद्य तेल निकाला जाता हैं। किन्तु आजकल चूंकि कपड़ों के रंग (फेब्रिक कलर) स्थानीय दुकानों में उपलब्ध हैं अतः इनका ही प्रयोग लोगों द्वारा किया जाता है। चित्रण हेतु मुख्यतः पीला, नारंगी, हरे, सिंदुरी, लाल, आसमानी, काले व चांदनी रंगों का प्रयोग किया जाता है। ब्रुश बनाने के लिए बेंत या टहनी के किनारों को कूटा जाता है परंतु आज इनका स्थान बाजार में उपलब्ध ब्रुशों ने ले लिया है।

चित्रण हेतु सामने की दीवार बगल की दो दीवारों को तैयार किया जाता है तथा सामने की दीवार साथ वाली दीवारों से लगभग दुगुनी होती है। इन

दीवारों को पहले गाय के गोबर के घोल से दो बार लीपा जाता है व इसके ऊपर सफेद चॉक पावडर से लीपकर चित्रण की सतह तैयार की जाती है। इस प्रक्रिया को लीपना कहा जाता है। मुख्य दीवार या बरामदे व रसोईघर का स्थान बहुत ही पवित्र माना जाता है। इस बरामदे की बगल की दो दीवारों का चित्रण भी सामान्य देवताओं, भूत-प्रेत व आकृतियाँ बनाकर किया जाता है।

लखाड़ा जब चित्रकारी करता है, बडवा व उसके साथी पारंपरिक गीत गाते रहते है। पिथोरा चित्रकला में अधिकतर चित्रण इनके द्वारा किए जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों के समय का होता है। इसमें बीच में एक छोटा आयताकार बनाया जाता है जिसमें नारंगी बिंदु अंगुलियों से बनाए जाते हैं जिसे टीपना कहा जाता है तथा यह धार्मिक अनुष्ठान के अंत में चित्रकला के पूर्ण होने पर किया जाता है। टीपना के बगल में पिथोरा बाबा व पिथोरी (पिथोरा की पत्नी) का चित्र बनाया जाता है। सबसे ऊपर चंद्रमा, सूर्य, बंदरों व पशुओं आदि के चित्र बनाए जाते हैं।

पिथोरा चित्रकला

गोंड लोकचित्रकलाः-

मध्यप्रदेश के मण्डल जिले की प्रसिद्ध जनजातियों में से एक 'गोंड' द्वारा बनायी गयी चित्र कला की विशिष्ट कलाशैली को गोंड चित्रकला के नाम से जाना जाता है। लम्बाई और चौड़ाई केवल इन दो आयामों वाली ये कलाकृतियाँ खुले हाथ बनायी जाती हैं जो इनका जीवन दर्शन प्रदर्शित करती हैं। गहराई, जो किसी भी चित्र का तीसरा आयाम मानी गयी है, हर लोककला शैली की तरह इसमें भी सदा लुप्त रहती है जो लोक कलाओं के कलाकारों की सादगी और सरलता की परिचायक है।

गोंड कलाकृतियाँ इस जनजाति के स्वाभाव और रहन सहन की खुली किताब हैं। इनसे गोंड प्रजाति के रहन सहन स्वाभाव का अच्छा परिचय मिलता है। कभी तो ये कलाकृतियाँ यह बताती हैं कि कलाकारों की कल्पना कितनी रंगीन हो सकती है और कभी यह कि प्रकृति के सबसे फीके चित्रों को भी ये अपने रंगों से कितनी जीवंत बना सकते हैं।

उदाहरण के लिये वे छिपकली या ऐसे ही अकलात्मक समझे जाने वाले जंतुओं को तीखे रंगो से रंग कर चित्रकला के सुंदर नमूनों में परिवर्तित कर देते हैं। यदि हम इसका दार्शनिक पक्ष देखें तो यह उनकी प्रकृति को भी रंग देने की उत्कट भावना को प्रदर्शित करता है।

उनके द्वारा बनाए गए चित्रों के आकार शायद ही कभी एक रंग के होते है। कभी उनमें धारियाँ डाली जाती हैं कभी उन्हें छोटी-छोटी बिंदियों से सजाया जाता है और कभी उन्हें किसी अन्य ज्यामितीय नमूने से भरा जाता है। ये कलाकृतियाँ हस्त निर्मित कागज़ पर पोस्टर रंगों से बनाई जाती हैं। चित्रों की विषयवस्तु प्राकृतिक प्रतिवेश से या उनके दैनिक जीवन की घटनाओं से ली जाती है। फसल , खेत या पारिवारिक समारोह लगभग सभी कुछ उनके चित्रफलक पर अपना सौन्दर्य

बिखेरता है। कागज पर चित्रकला के अतिरिक्त गोंड जनजाति स्वयं को भित्तित्रिण और तल चित्रण में भी व्यस्त रखती है।

धार्मिक अनुष्ठानों का एक अंग यह चित्रकला न केवल आसपास के सौंदर्य में वृद्धि करती है अपितु उसकी पवित्रता एवं परंपरा भी बनाए रखती है। पिसे हुए चावल के लेप पीले गेरू और अन्य मटियाले रंगों में बनाई गयी ये कलाकृतियाँ परिवार की विशेष घटनाओं, ऋतुओं के बदलने, फसल के बोने, वर्षा के प्रारंभ, फसल के कटने या पारिवाकि समारोह जैसे जन्म, विवाह, गर्भावस्था और मृत्यु पर हर समय नऐ चित्र बनाए जाते हैं विशेषरूप से आँगन, प्रवेश द्वार और घर के अन्य स्थानों पर।

गोंड लोकचित्रकला

होर्‍या :-

पक्षियों में विशेष कर तोते का महत्व अधिक है, जिसे होर्‍या भी कहते है। ये पर्यावरण और मित्रता के प्रतीक होते हैं, इन्हें दीवारों पर सजावट हेतु भी गेरू या खड़िया से बनाया जाता है। जिरोती में होर्‍या एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए पंक्तिबद्ध बनाये जाते हैं, जहाँ ये मैत्री के प्रतीक होते हैं। इसी प्रकार मिट्‌ठू चौक भी रंगोली, गेरू या खड़िया द्वारा बनाया जाता है।

होर्‍या